मानव मन्दिर

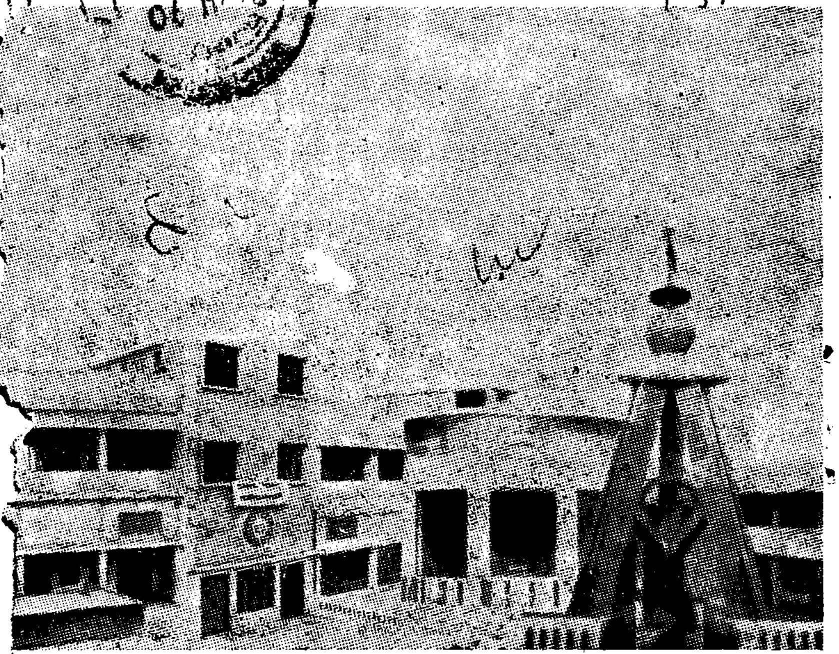

FORM 1

(See Rule 8)

Place of Publication	Hoshiarpur
Date of Publication	10th of every month
Periodicity of publication	Monthly
Printer's Name	Dr. Paras Ram Aggarwal
Nationality	Indian
Address	Manavta Mandir, Hoshiarpur
Editor's Name	Dr. Paras Ram Aggarwal
Nationality	Indian
Address	Manavta Mandir, Sutehri Road, Hoshiarpur.
Name and address of individuals, who own the Manav Mandir or partners or shareholders, holding more than one percent of the TOTAL	Faqir Library Charitable Trust, Hoshiarpur.

I, Dr. Paras Ram Aggarwal hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

Dated : 10-3-85 Signature of Publisher

Printed and Published by : Dr. Paras Ram at Shiv Dev Rao Press, Manavta Mandir, Hoshiarpur. for the Faqir Library Charitable Trust, Hoshiarpur.

मानवता मन्दिर में अगला मासिक सत्संग 18-11-1990 को होगा।

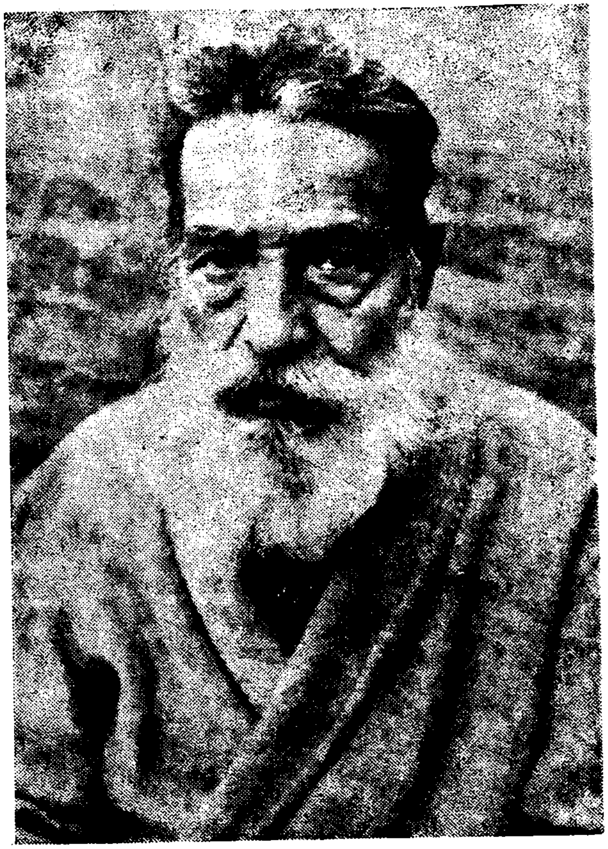

Param Sant Param Dayal
Pt. Faqir Chand Ji Maharaj

Param Sant Manav Dayal
Dr. I. C. Sharma Ji Maharaj

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

मासिक—

मानव मन्दिर

विश्व में मानव मात्र के सामाजिक, सांस्कृतिक
और आध्यात्मिक कल्याण और विकास की
सेवा में संलग्न मासिक पत्र।

BE MAN

मनुष्य बनो

सम्पादक :
डा० परस राम अग्रवाल

वर्ष 17	शनिवार, 10 नवम्बर 1990	संख्या 7

शरीर का भी ध्यान रखो

परमसन्त हज़ूर दाता दयाल जी महाराज

हिन्दुओं में जिसको देखो, वह शरीर की ओर से बेपरवाह दिखाई देता है और उसको लानत-मलायत का निशाना बनाया जाता है। दो-चार ज्ञान की बातें तो क्या सुन लीं कि बस ज्ञानी ही बन गये और लगे ज्ञान की निराली बातें छाँटने। यह खबर ही नहीं कि आखिर यह देह भी किसी उद्देश्य के लिए है और इसका कोई अभिप्राय भी है। आज के ज़माने में अमल करने वाले तो बहुत कम हैं परन्तु सुनी-सुनाई बातों को चबा-२ कर दिमाग़ को चाटने वाले बहुत हैं। जिन महात्माओं ने तपस्या पर बल दिया और शरीर को दुःख का कारण बनाया था, उनका अभिप्राय कुछ और ही था न कि शरीर को यों ही अनुपयोगी बना देना।

जिसका शरीर अच्छा नहीं, उसका मन भी अच्छा नहीं होता, और जिसका मन ही अच्छा नहीं, वह धर्म के मार्ग पर क्या चलेगा? जप, तप, पूजा, योग का साधन केवल तन्दुरुस्त मनुष्य ही कर सकता है। रोगी मनुष्यों से न तो दुनिया का काम होगा न धर्म का। रोगी मनुष्य निकम्मा और अनुपयोगी सिद्ध होता है। इसलिये जो व्यक्ति बिना समझे-बूझे अपने शरीर को सुखाता है, वह पुण्य नहीं पाप करता है। हिन्दी भाषा में एक कहावत है,

"काया राखै धर्म है, काया मारे पाप।"

प्राचीनग्रन्थों के अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि ऋषियों को अपने स्वास्थ्य का बड़ा ध्यान रहता था। यहाँ तक कि मुसीबत के समय वे इस प्रकार के पदार्थ भी खा लेते थे, जो वास्तव में मनुष्य की वेदना का कारण हुआ करते हैं।

मनुष्य न ही केवल आत्मा है और न ही केवल देह। वह दोनों की मिलौनी से बना है। जो वस्तु आत्मा और देह को मिलाती है वह तीसरा अंश है मनुष्य का मन। इसलिये अच्छा मनुष्य वह है जिसके कि ये तीनों अंश स्वस्थ रहें। आत्मा के लिए दुःख-सुख, रोग तथा मृत्यु नहीं हैं, यह सत्य है। मगर इस सत्य को जानता कौन है? इसलिये यहाँ हम जिस गरज़ से आत्मा शब्द का प्रयोग कर रहे हैं, वह केवल साधारण लोगों के लिए है, न कि फ़िलास्फ़र्स और ज्ञानियों के लिए। यहाँ हम आत्मा उसी को ही कहेंगे जो साधारण समझ रखने वालों के ख्याल में जन्मता और मरता है। बस!

दुनिया में अधिकतर लोग दीर्घजीवन, सुख, धन, यश, सन्तान तथा स्वर्ग के इच्छुक होते हैं। परन्तु यह छः बातें निर्बल आदमियों के हाथ नहीं आतीं। देह से निकम्मा आदमी, लम्बी आयु नहीं पाता, क्योंकि बीमारी उसके शरीर के अंगों में विष घोलती रहती है। शरीर से दुर्बल आदमी धन भी नहीं कमा सकता, क्योंकि धन तो परिश्रम करने से आता है और परिश्रम केवल तन्दुरुस्त आदमी ही कर सकता है। जिसका शरीर अच्छा नहीं, वह सुखी कहाँ से रहेगा? वह तो खाट पर पड़ा चिल्लाता ही रहेगा। 'एक तन्दुरुस्ती हज़ार नियामत है।' अस्वस्थ मनुष्य यश भी कैसे बटोरेगा? वह यश और स्वर्ग के सुख से भी वंचित

रहेगा।

सारे शिष्टाचार की निर्भरता भी तन्दुरुस्ती पर निर्भर है। यह सभी जानते हैं कि क्रोध का शिकार कमज़ोर व निर्बल व्यक्ति ही होते हैं बलवान् क्रोध कम करते हैं। यही हालत मनुष्य के अन्य भावों की है।

जब शरीर-जगत् की व्यवस्था में तन्दुरुस्ती इतनी मुख्य और लाभदायक वस्तु है तो फिर इसे नासमझी से क्यों दुर्बल तथा नष्ट किया जाता है। क्या वे महात्मा अज्ञानी नहीं हैं, जो खड़े २ अपनी देह और हाथ-पाँवों को सुखा देते हैं? परलोक की बात किसने देखी है। यह तो अदृश्य विषय है। कौन जाने क्या होता है? जो वस्तु प्रत्यक्ष है तुम्हारे सामने है उसे तो देखो। तुम स्वयं दृष्टि को ऊँचा करके देख सकते हो कि दुनिया में शक्ति का झण्डा ऊँचा है। "जिसकी लाठी उसकी भैंस", कमज़ोर की बहू जने-२ की जोरू। "रोगी, दुर्बल और निकम्मे आदमी यहाँ क्या सुख भोग रहे हैं, जो आगे भोगेंगे?" इत्यादि।

छान्दोग्य उपनिषद् की सातवीं परिपाटी के अनेक खण्डों में नारद ऋषि और सनत् कुमार का जो संवाद आया है, विचार करने योग्य है। यह संवाद 10-15 पृष्ठों का है, जिसका सारांश यह है कि इस संवाद में सनत् कुमार ने नाम, वाणी, मन, ध्यान, ज्ञान, शक्ति आदि को एक-दूसरे से अधिक शक्तिशाली बतलाया है।

जितनी शक्तियाँ हैं, चाहे वे मन की हों या मस्तिष्क की सब स्वास्थ्य पर ही निर्भर हैं। यह दुनिया कर्मक्षेत्र है, जहाँ हम सब कर्म करने के लिए आये हुए हैं। कर्म करना इन्द्रियों का धर्म है। इन्द्रियों तथा समस्त अंशों के मिलाप का नाम शरीर है। आप लोग देखते हो कि यदि किसीकी

एक भी इन्द्रिय दौष युक्त हो जाय या नष्ट हो जाय तो उस व्यक्ति में ऐब आ जाता है और वह लक्षण अशुभ माना जाता है। फिर क्या लाभ कि सारे शरीर को नासमझी तथा बेपरवाही के कारण दुर्बल, रोगी या निकम्मा बना दिया जाय। क्या तुम जानते हो कि शरीर कैसे बना रहता है? परिवर्तन प्रकृति का नियम है, शरीर भी परिवर्तनशील है। संसार की प्रत्येक वस्तु अपने में कुछ न कुछ मिलाती और कुछ न कुछ निकालती रहती है। साँस लेने से हवा के सूक्ष्म परमाणु अन्दर आते और जाते रहते हैं। जो साँस बाहर जाती है, वह विषैले परमाणुओं को निकालती है और जो अन्दर की ओर आती है, शुद्ध परमाणुओं को खेंच कर शरीर में मिलाती रहती है। यह कार्य प्राकृतिक रूप से चलता रहता है। तुम्हें चाहे इस बात का ज्ञान हो या न हो परन्तु यह नियम चलरा रहता है। इस सिद्धान्त पर तुम मुँह से अपने अन्दर भोजन पहुँचाते हो,जो घुल कर शरीर का अंश बनता है और मलमूत्र से उस अंश कोनिकाल देता है, जो घुलने योग्य नहीं है, जो बिलकुल निकम्मा और निरर्थक है। बुद्धि,चित्त, अहंकार और समस्त दूसरी इन्द्रियाँ निरन्तर इस प्रकार का व्यवहार करती रहती हैं। इसी व्यवहार के कर्म में संस्कार और कर्म का चक्र निरन्तर चलता रहता है। मनुष्य नई-२ वस्तुओं को देखने, सुनने, चखने, छूने और पढ़ने का इच्छुक रहता है। जो वस्तु दीर्घकाल तक पास में रहती है, दृष्टि से गिर जाती है। नई वस्तु की इच्छा रहती है, चाहे धर्म हो या कर्म, सब में परिवर्तन आता रहता है। आदमी पहिले एक ख्याल का लालायित रहता है। जब वह पूरा हो जाता है, तो नये ख्याल को ग्रहण कर लेता है। इसी परिवर्तन के क्रम में मनुष्य की उन्नति होती। जो लोग परिवर्तन के प्रतिकूल काम करते हैं वे

आगे उन्नति नहीं कर सकते।

जीवन चाहता है कि क्षण-२ में परिवर्तन होता रहे। जो नया मकान बनता है कुछ समय बाद वह मुरम्मत चाहता है। यदि उसकी मुरम्मत न कराई जाय तो वह शीघ्र खराब हो जायेगा। ठीक यही दशा इस शारीरिक भवन की है। यदि शरीर की भी मुरम्मत होती रहे, तो यह ठीक रहेगा नहीं तो नष्ट हो जायेगा। परिवर्तन का दूसरा नाम काल और माया है। तुम देह रखकर, शरीरधारी होते हुए, कैसे इस पर विजय पा सकते हो? लाख तर्क, वितर्क करो, जब तक शरीर है, तुम उसकी उपेक्षा नहीं कर सकते। यह शरीर हर तीसरे या सातवें साल बिलकुल बदल जाता है, मांस, मज्जा, हड्डी सब में परिवर्तन आ जाता है।

आशा है कि अब तक आपने शारीरिक आकर्षण, रहस्य तथा उसके महत्त्व को समझ लिया होगा। अच्छे परमाणु खिच कर शरीर के अन्दर जाते हैं और शरीर का अंश बन जाते हैं। बुरे परमाणु मल के रूप में शरीर से बाहर निकल जाते हैं। यह आकर्षण के नियम राग-द्वेष के दो रूप हैं, जिन्हें वैज्ञानिक "सेण्ट्रीफ्यूगल" तथा "सेण्ट्रीपीटल" फ़ोर्सिज़ के नाम से पुकारते हैं। यह व्यवहार केवल मनुष्य के शरीर से ही नहीं होता, बल्कि दुनिया की तमाम प्राकृतिक शक्तियाँ, इस प्रकार का व्यवहार करती हैं। यदि शरीर को तन्दुरुस्त रखा जाय, तो उसकी तमाम इन्द्रियाँ ठीक और बलवान रहती हैं और वे परमाणुओं को खींचकर, अपने में मिलाती रहेंगी, वर्ना उनसे यह काम नहीं होगा। यदि तुम अपनी गलती से किसी एक भी इन्द्रिय को नष्ट कर दोगे, तो अंगहीन बन जाओगे और अंगहीन मनुष्य विश्वास के योग्य नहीं होता। लोग अंगहीन व्यक्तियों के विषय में बुरे-२ ख्यालात रखते हैं। उन्हें किसी

शुभ काम करने से पहिले देख लेना बदशकुनी समझते हैं। अनुभव ने सिद्ध कर दिया है कि अंगहीन व्यक्ति विश्वास के योग्य नहीं होते। एक उदाहरण मैं आपको यहाँ देना चाहूंगा। एक भेड़ा आदमी मुझसे बहुत मिला करता था। अत्यन्त मीठा बोलने वाला और बहुत ही मिलनसार था। मैं समझता था कि वह एक नेक आदमी था। मेरे मित्र कहते रहते थे कि मैं उससे बचकर रहूँ। अन्त में उसने मुझे धोखा दिया। अपने थोड़े से लाभ के लिए मेरा बहुत बड़ा नुक्सान कर दिया। इसी प्रकार और भी कई घटनाएँ घटीं। यह केवल दृष्टान्त मात्र है। मेरा कहने का अभिप्राय यह है कि मनुष्य को चाहिए कि वह अपनी समस्त इन्द्रियों को अच्छी हालत में रखे। उनको बिगड़ने न दे। शरीर की सभी शक्तियों की वृद्धि होने पर ही सम्पूर्ण शारीरिक और मानसिक उन्नति होती है।

हिन्दु धर्म में तो विशेष रूप से शरीर के विरुद्ध युद्ध करने की बातें आती हैं, "मन को मारो, तन को जारो" इत्यादि। परन्तु लोग इस गहराई का मतलब ही नहीं समझते। वे यह नहीं जानते कि यह शिक्षा किनके लिए है और क्यों दी गई है तथा प्रत्येक व्यक्ति इसका अधिकारी भी है या नहीं? पहिले तो मारने और जलाने का मतलब इतना है कि मन को काबू में रखा जाय दूसरी बात यह है कि यह अवस्था केवल उन सांसारिक लोगों के लिए है, जिनको शान्ति नहीं मिलती। वे पूजा करें और इन्द्रियों का दमन करें। परन्तु यदि मनुष्य समता के रास्ते पर चलता रहे, तो उसको पूजा तथा इन्द्रियदमन की आवश्यकता ही नहीं रहती। कौन-सा ऐसा ऋषि हुआ है जिसने स्वास्थ्य को मिट्टी में मिला दिया हो या जिसके पास बाल-बच्चे न रहे हों? विशेषताओं को जाने दो। उनकी हालत को

साधारण रूप से पढ़ो। इसी तरह यह भी कहा गया है :—

"सन्त सयान वही जग में, घर में जिन जोग कमाना हो।"

समता या सम अवस्था एक प्रकार का योग है। इससे मनुष्य जो चाहे कर सकता है और उसकी कमाई पूरी हो सकती है। जंगल में केवल जंगली मिज़ाज वाले असभ्य आदमी बसते हैं, जिनसे न धर्म का काम होता है और न दुनिया का। कही-सुनी बातों की ओर ध्यान न दो बल्कि अपनी आँखों को खोल कर देखो।

मैं तुमसे बार-२ कहता हूँ कि शरीर की सम्भाल में गाफ़िल न रहो। शरीर घोड़े के समतुल्य है और तुम यात्री के समतुल्य हो। यदि तुम घोड़े की हत्या कर दोगे, तो फिर सामान का बोझ कौन उठायेगा? कौन तुम्हें इष्ट स्थान तक पहूँचायेगा? हाँ इतना ध्यान रखो कि तुम मन को इतनी ढील न दो कि वह तुम पर हावी हो जाय, तुम्हारे काबू में न रहे। 'शरीर को स्वस्थ रखो' या 'शरीर का भी ध्यान रखो' से मेरा अभिप्राय यह नहीं कि हर समय शरीर ही शरीर का ध्यान रखो और सब के सब पहलवान बन जाओ। परन्तु इतना ज़रूर कहूंगा, संसार के संग्राम में, अपने शरीर को इतना शक्तिशाली ज़रूर बनाओ कि जीवन की खेंचातानी में वह जल्दी से समाप्त न हो जाय। इस शरीर की सम्भाल के लिए 1) प्राण, 2) वायु, 3) जल तथा 4) भोजन की अत्यन्त आवश्यकता रहती है।

(1) प्राण वह शक्ति है जो नस-नाड़ियों को गति में रखता है। प्राण की न्यूनता तथा अधिकता से सभी रोग उत्पन्न होते हैं। इस बात का सदा ध्यान रखो कि प्राण ठीक तरह से चलता रहे, ताकि शरीर के किसी भाग में किसी प्रकार की कमी न आने पावे। प्राण को ठीक रखने के लिए व्यायाम, प्राणायाम और योगाभ्यास ज़रूरी हैं। यदि प्राण

को रोकने का अभ्यास न हो सके, क्योंकि वह बहुत ही कठिन है, तो कम से कम शब्द का अभ्यास करो। इससे प्राणों का शरीर में नियमित संचालन रहेगा, क्योंकि शब्द तुम्हारे घट-घट में प्राण पर अधिकार रखने की शक्ति रखता है। इस अभ्यास में सन्ध्या, उपासना सभी आ जाते हैं और मनुष्य को न ही शारीरिक लाभ पहुँचता है बल्कि धार्मिक तथा आध्यात्मिक लाभ भी पहुँचता है। परन्तु शब्द अभ्यास को बताने वाले उस सयय तक आपको भेद नहीं बतायेंगे, जब तक कि उन्हें यह विश्वास न हो जाय कि आप उसके अधिकारी हैं। मैं आपको सलाह देता हूँ कि आप "सुरत-शब्द योग कल्पद्रुम" नामक पुस्तक का अध्ययन अवश्य करो। प्राणों का व्यायाम सुबह-शाम दोनों समय करते रहो। प्राणों की गति से रक्त में गर्मी और गति आती रहती है, जो इन्द्रियों में कोई कमी नहीं आने देती। अभ्यास इतना सरल है कि इसे बूढ़ा, जवान, स्त्री, पुरुष सभी कर सकते हैं। इसका अभ्यास ओजस् तथा वीर्य को भी बढ़ाता है। अमृत की धार, जो मस्तिष्क से तालु के मार्ग द्वारा निकलती है, नियमपूर्वक जारी रहती है। यह स्वास्थ्य के लिए बहुत ही हितकर है।

(2) दूसरी आवश्यक वस्तु है वायु, जो सदा शुद्ध और स्वच्छ होनी चाहिए। खुली हवा में रहने की आदत डालो। बन्द मकान में न रहो। जहाँ की हवा विषैली, भारी और दूषित हो वहाँ मत रहो। जब घर बनवाओ ऊँचा और चारों ओर खुला बनवाओ ताकि सूर्य की धूप और हवा का प्रभाव भली भाँति पड़े।

(3) तीसरी महत्त्वपूर्ण वस्तु है पानी या जल। जल के बारे में भी स्वच्छता का ध्यान बहुत जरूरी है। शरीर में 70 प्रतिशत भाग पानी का ही है। पानी की कमी रक्त

को बिगाड़ती है, इसलिये शरीर में पानी की कमी नहीं होनी चाहिए। बहुत से रोग रक्त की खराबी से होते हैं और बदहज़मी भी इसी की खराबी से होती है। यदि तुम्हें सुबह के समय मल त्याग ठीक प्रकार से नहीं होता या कब्ज़ की शिकायत रहती है तो प्रातःकाल सूर्योदय से पहिले पानी पी लिया करो। इससे यह शिकायतें दूर हो जायेंगी। मैं न वैद्य हूँ न डाक्टर। वे साधारण सी बातें आपको बता रहा हूँ, जिनसे मुझे जीवन में लाभ पहुँचा है।

(4) चौथी महत्त्वपूर्ण वस्तु भोजन है। कभी अंट-शंट चीज़ें न खाओ। दिन में केवल दो बार भोजन किया करो। मेरे माननीय मुन्शी सूरज नारायण साहिब मेहर, दिन में केवल दो बार भोजन करते हैं। यद्यपि उनके स्वास्थ्य में अब कुछ खराबी आ गई है, फिर भी उन्हें पाचनशक्ति की शिकायत नहीं रहती। इस बात का ध्यान रखो कि भोजन गरिष्ठ न हो, सादा और शीघ्र पचने वाला हो। भारी भोजन से बहुत रोग होते हैं। सादा भोजन स्वास्थ्य को बनाता है और शरीर के अंगों तथा इन्द्रियों को अच्छी दशा में रखता है। मैं पाँच आदमियों के बराबर काम करता हूँ, परन्तु खाना पाँच आदमियों के बराबर नहीं खाता मेरी खुराक बहुत कम है। मैंने वर्षों से घी और दूध को हाथ भी नहीं लगाया। केवल हल्के-२ दो-तीन फुल्के, भाजी और मामूली मात्रा में दाल लेता हूँ। हाँ जब घर पर आता हूँ तो घर वालों के आग्रह पर थोड़े दूध और घी का इस्तेमाल कर लेता हूँ, क्योंकि मैं केवल दृढ़ता से किसी चीज़ का विरोध नहीं करता। किन्तु यहाँ भी कभी-२ जौ के फुल्के तथा साग लेत हूँ। उस समय दाल का प्रयोग नहीं करता। जो लोग लाहौर में मुझसे आकर मिले हैं, वे आपको इस विषय में बतला सकते हैं।

मन, बुद्धि और विचार भोजन से ही बनते हैं। यदि आप सादा और शीघ्र पचने वाला भोजन खाओगे, मन पवित्र, बुद्धि निर्मल तथा विचार ऊँचे रहेंगे। यदि इसके प्रतिकूल भोजन खाओगे, नतीजा भी प्रतिकूल निकलेगा। सादगी के जीवन से विचार भी उच्च होते हैं।

मांस खाना स्वास्थ्य के लिए इतना अच्छा नहीं है। यह मैं इसलिये नहीं कह रहा, क्योंकि मैं स्वयं मांस नहीं खाता। मेरी यह राय धार्मिक दृष्टिकोण से भी नहीं है, किन्तु स्वास्थ्य के नियमों के अनुसार है। इस बात पर कभी विश्वास मत करो कि मांस शरीर को बलवान् बनाता है। मांस का प्रयोग मनुष्य को उच्च विचार और विशाल-हृदयी बनने से रोकता है, क्योंकि मांस स्थूल और शीघ्र सड़ने वाली वस्तु है। इसीके कारण हिंसा बढ़ती है। बौद्धों तथा जैनों में मांस न खाने के कारण बहुत उच्च विचारों वाले आदमी होते हैं। दुनिया के समझदार लोग मांसभक्षण छोड़ते जा रहे हैं। मांस खाने वाले साधारणतया कठोर-हृदय होते हैं। उनमें निकृष्ट भाव प्रबल हो जाते हैं। मांस खाने वाले पशु भी आमतौर पर मक्कार, छली तथा कपटी होते हैं। वे अपना शिकार धोखे से करते हैं जबकि शाकाहारी पशु ऐसे नहीं होते। बैल, हाथी और भैंसे को देखो वे बिना डर के सामने लड़ने को आते हैं। मगर शेर, चीते, भेड़िये दुबक कर शिकार करते हैं। मांस खाने वाले लोगों को जब कभी पेचिश आदि के रोग हो जाते हैं, तो वे इन रोगों से कभी-२ मर भी जाते हैं, मगर शाकाहारी बहुत कम इस रोग से मरते हैं। नशीली वस्तुओं का सेवन भी हानिकारक है, क्योंकि वह रक्त में बहुत गर्मी पैदा करते हैं और शरीर के पुर्जों को बिगाड़ देते हैं।

साग, तरकारी, फल और अन्न समता के साथ खाना

चाहिए, इससे स्वास्थ्य ठीक रहता है शाकाहारी लोग परिश्रमी भी होते हैं, और धार्मिक पूजा-पाठ तथा उपासना की योग्यता भी इनमें अधिक होती है। इसी कारण से ही बौद्ध, जैन तथा सन्तमत को मानने वाले मांस और शराब का निषेध करते हैं।

यदि आप इन छोटी-२ तथा साधारण-साधारण बातों को अपने जीवन का नियम बना लें, तो आप सदा तन्दुरुस्त रहेंगे और तन्दुरुस्त रहकर लोक तथा परलोक दोनों को बना लेंगे। यदि स्वास्थ्य की ओर बिलकुल बेपरवाह रहेंगे, तो आपकी देह बिलकुल नकारा हो जायेगी। मैं तो केवल इतना कहूंगा :—

"जब तुम दुनिया का सरल काम नहीं कर सकते, तो परमार्थ के कार्य की तुमसे क्या आशा की जा सकती है? इसलिये इस कहावत को सदा याद रखो, "एक तन्दुरुस्ती हज़ार नियामत और एक रोग हज़ार आफ़त।" इसीलिये ही मैं बार-२ कहता हूँ कि शरीर का भी ध्यान रखो।"

अनगढ़िया देवा

परमसन्त परम दयाल पण्डित फकीर चन्द जी महाराज

हे मेरे प्यारे धर्म और पन्थ के मानने वालो! मैं हिन्दु था। ब्राह्मण कुल में मेरा जन्म हुआ। अपने आधार मालिक या आदि की खोज मुझे बचपन से ही थी। मन में एक धुन थी कि मालिक के दर्शन करूँ, उनसे मिलूँ। क्योंकि हिन्दु होने के नाते बचपन से यह संस्कार दिया गया था कि मालिक अवतार लेता रहता है, इसलिये उस अवतार को मैं अपनी आँखों से देखना चाहता था।

एक दिन मैं 24 घण्टे तक रोता रहा, रोता रहा और यह चाहा कि मालिक को मनुष्य के रूप में मिलूँ, उससे प्रेम करूँ तथा उसकी सेवा करूँ। 1905 का एक दृश्य, जिसने मुझे यह विश्वास दिलाया कि मेरा मालिक दाता दयाल महर्षि शिवव्रत लाल जी महाराज के रूप में अवतरित हो चुका है। उनके चरणों में पहुँचा, अपनी भावना के अनुसार, उनसे प्रेम किया, सेवा की तथा आनन्द प्राप्त किया। उन्होंने ही मुझे सन्तमत पर चलने का आदेश दिया और उस मालिक को जैसा कि कबीर ने इस शब्द में लिखा है :—

अनगढ़िया देवा कौन करे तेरी सेवा।
गढ़े देव को सब कोई पूजै नित ही लावै सेवा।

पूर्णब्रह्म अखण्डित स्वामी, ताको न जानै भेवा ।।
दस अवतार निरंजन कहिए, सो अपनो न होई ।
यह तो अपनी करनी भोगें, कर्त्ता और ही कोई ।।
ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर कहिये, इन सर लागी काई ।
इनके भरोसे मत कोई रहियो, इन्होंने मुक्ति न पाई ।।
जोगी, जती, तपी, संन्यासी, आप आप में लड़िया ।
कहें कबीर सुनो भाई साधो, शब्द लखे सोई तरिया ।।

मालिक को अनगड़िया देवा क्यों कहा गया है ? उसे अनगढ़िया देवा इसलिये कहा गया है क्योंकि उसको किसीने गढ़ा (बनाया) नहीं ।

एक परम पुरुष अजायब पाया, कोई मरम न उसका पाया ।
पर सत हाथ नहीं आया, ऋषि मुनि सब धोखा खाया ।।

कबीर साहिब ने कहा है :—

गढ़े देव को सब कोई पूजे, नित ही लावें सेवा ।
पूर्ण ब्रह्म अखंडित स्वामी, ताको न जानै भेवा ।।
दस अवतार निरंजन कहिए, सो अपनो ना होई ।
यह तो अपनी करनी भोगें, करता औरहि कोई ।।

लोग गढ़े देव को (मूर्तियों आदि को) पूजते हैं, परन्तु जो असली ब्रह्म है, पूर्ण ब्रह्म है, उसका भेद तो कोई जानता ही नहीं । मन्दिर में मूर्तियें गढ़ी हुई होती हैं । राम का भी शरीर था, कृष्ण का भी शरीर था । वे सब गढ़े गये थे (उनकी मूर्तियाँ बनाई गई थीं) बाहरी गुरु का शरीर भी गढ़ा हुआ होता है, चाहे वह कबीर हो, चाहे राधास्वामी दयाल या गुरु नानक देव । बस ! मुझे एक ख्याल ने विवश किया कि उस अनगढ़े देव को ढूँढूँ ।

जितने भी रूप, रंग, विचार, भाव मेरे अन्तर में पैदा होते थे, वे क्या सिद्ध हुए ? वे गढ़े हुए सिद्ध हुए । मेरे

अन्तर में जो रूप बनता है, चाहे वह दाता दयाल जी का हो, चाहे राम या कृष्ण का, अथवा किसी और का, वह मेरे मन की गढ़त है। वह मेरे ही संकल्प से बना है। यदि मेरे मन में कोई आशाएँ उठती हैं या वासनाएँ जाग्रत होती हैं, वह भी मेरी अपनी ही गढ़त है यानि कि मैं ही उनको गढ़ता हूँ। फिर वह मालिक है कहाँ? वह वहाँ है, जहाँ पिण्ड नहीं, देह नहीं, क्योंकि देह तो गढ़ा हुआ होता है। वह मन भी नहीं, क्योंकि मन के अन्दर जो संकल्प उठते हैं, वे गढ़े हुए होते हैं। वह ब्रह्माण्ड भी नहीं, क्योंकि सूर्य, चन्द्र, सितारे, शिव लोक, विष्णु लोक सब के सब गढ़े हुए हैं, बनाये हुए हैं। फिर इनसे परे क्या है? इनसे परे है केवल एक तत्त्व, परमतत्त्व वह क्या है क्या नहीं, किसी की शक्ति नहीं कि वह उसे जान सके। वह तो न बुद्धि में आता है न मन में। वह न चित में आता है, न अहंकार में। उसके होने का यदि कोई अनुभव कर सकता है, तो केवल पिण्ड, अण्ड, ब्रह्माण्ड के पार जाने पर कर सकता है।

पिण्ड अण्ड ब्रह्माण्ड के पारा।
वह है खसम हमारा ॥

जब तक कोई शरीर, ब्रह्म और ब्रह्माण्ड को नहीं भूलेगा उसको उस अनगढ़िया देवा या अजायब पुरुष का अनुभव नहीं हो सकता। मुझे यह अनुभव हुआ, वह मालिक जिसकी मैं खोज किया करता था, वह यही अजायब पुरुष ही है। मैं कबीर साहिब, स्वामी जी इत्यादि के साथ सहमत हूँ, जो वास्तविकता को बतलाते हैं, परन्तु उन सन्तों के साथ सहमत नहीं हूँ, जो जन-साधारण को यह कहते हैं कि अन्त समय उनका बाहर का गुरु उनको निजधाम को पहुँचा देगा। ऐसे पुरुष सन्त नहीं, हाँ वे महापुरुष हो सकते

हैं, क्यों ? क्योंकि जितने भी धर्मों तथा पन्थों के आचार्य हैं, वे निबल, अबल तथा अज्ञानी जीवों को सहारा देते हैं, जिससे उनको एक प्रकार की सन्तुष्टि मिलती है। ऐसे महापुरुष दयावान् कहलाने योग्य हैं, परन्तु वे सन्त नहीं। परन्तु इस सहारे देने की ओट में मानव जाति असलियत को न समझने के कारण, विभिन्न धर्मों,पन्थों तथा सम्प्रदायों में बँट गई हैं। कोई हिन्दु बना, कोई सिक्ख बना, कोई मुसलमान बना, कोई ईसाई बना, तो कोई जैनी या बुद्ध, कोई नानकपन्थी बनी तो कोई राधास्वामीपन्थी। परिणाम क्या हुआ ? लड़ाई, झगड़ा और संघर्ष। योगी, तपस्वी संन्यासी सब आपस में लड़ते रहते हैं, क्योंकि उनमें स्वार्थ है, अपना परायापन है। कबीर साहिब कहते हैं :—

जोगी जती तपी संन्यासी, आप आप में लड़िया।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, शब्द लखै सोई तरिया।

सन्तों की अभिव्यक्ति इस कलियुग में केवल सच्चाई को वर्णन करने के लिए और धार्मिक पक्षपात तथा द्वेष को मिटाने के लिए ही हुई है :—

सतयुग त्रेता द्वापर बीता।
काहू न जानी शब्द की रीता॥
कलियुग में स्वामी दया विचारी।
परगट करके शब्द पुकारी॥

स्वामी जी ने अनगढ़िया देवा का अनुभव किया और यह स्पष्ट कह दिया कि यदि तुम अपने असली या आदि घर को ढूँढना चाहते हो, तो तुम्हारे अन्दर जितने भी रंग, रूप, विचार तथा भाव उठते हैं, उन्हें माया समझो, काल समझो। तुम्हारा असली घर तो इनसे दूर है, परे है। यदि तुम अनामी धाम या अकाल गति तक जाना चाहते

हो, तो शब्द को पकड़ो, नाम को पकड़ो। यह कहने के लिए स्वामी जी ने कलियुग में आकर दया विचारी तथा सच्चे रहस्य को प्रकट किया। मेरे परमगुरु दाता दयाल जी महाराज ने मेरे ज़िम्मे निबल, अबल तथा अज्ञानी लोगों की सहायता करने की ज़िम्मेदारी लगा दी। मैंने उस कर्त्तव्य को पूरा करने के लिए अपनी सारी ज़िन्दगी दुःखी जीवों को सहायता देने में लगा दी।

यदि तुम निष्काम होकर किसी की सेवा करते हो, भूखे को रोटी, प्यासे को पानी, रोगी को दवा तथा अज्ञानी को ज्ञान देते हो, तो वह दान तुम्हारे लिए महाकल्याणकारी है। परन्तु यदि तुम मुझे दान इसलिये देते हो कि बाबा फकीर मुसीबत में प्रकट होकर तुम्हारी मदद करेगा, तुम्हारे बिगड़े हुए काम बना देगा, तो यह दान वास्तव में दान नहीं है यह तो तुम्हारी स्वार्थता है तुम्हारा अज्ञान है। जो महात्मा ऐसे-२ स्वार्थी लोगों का दान ग्रहण करते हैं, वे स्वयं डूबे हुए हैं, अज्ञानी हैं। जो सन्त महात्मा अपने शिष्यों को गुप्त रूप से यह बताकर कि वे अपने चेलों को मरते समय लेने आयेंगे और उन्हें सतलोक में ले जायेंगे, वे अधम हैं, धोखे में रखने वाले हैं।

मैं इस कलियुग में अनामी धाम से फकीर के चोले में आया हूँ सच्चाई को बताने। हज़ूर साँवले शाह (सावन सिंह जी महाराज) के कहने पर कि मुझे सत्संगों में निधड़क होकर सच्चाई प्रकट करनी है यद्यपि यह कठिन काम है, क्योंकि लोग कदम-२ पर मेरा विरोध करेंगे। उन्होंने कहा था, "फकीर! मैं डेरे के कारण सच्चाई प्रकट नहीं कर सका। दूसरी बात यह है कि मैं समझता हूँ कि जीव पूरे सत्य को जानने के अभी अधिकारी भी नहीं हैं। तुम सच्चे फकीर हो, निर्भय होकर काम करो, फिक्र न करो।

मैं तुम्हारा सहायक रहूँगा।"

मैं अपना काम कर चला। मेरी छोटी सी पुस्तक "अजायब पुरुष" प्रकाशित हो चुकी है। इसको पढ़ो, उस पर मनन करके लाभ उठाओ। कोई यह हरगिज़ नहीं समझे कि मैं दान के विरुद्ध हूँ। मैं इस बात को मानता हूँ कि जो कुछ देता नहीं उसे कुछ मिलता भी नहीं। यह जितने काम जिन महापुरुषों ने किये जैसे व्यास, आगरा, निरंकारी, स्वर्गआश्रम आदि, वह धन्य हैं। मैं दान का खण्डन नहीं करता। मैंने स्वयं भी मानवता मन्दिर बनाया है। परन्तु यदि कोई यह समझे कि यदि तुम मानवता मन्दिर में चार कमरे बनवा दो, तो फकीर बाबा प्रसन्न होकर तुम्हें फूँक मार कर सतलोक पहुँचा देंगे, तो यह झूठ होगा फ़रेब होगा। अरे भाई सतलोक में तो तुम्हें कोई भी नहीं पहुँचा सकता, वहाँ तो तुम्हें स्वयं पहुँचना है। किसी महापुरुष की बात को सुनकर, समझ कर, गुन कर और अपनी सुरत को मन, चित, बुद्धि और अहंकार से या दसवें द्वार से जब परे ले जाओगे, तभी तुम सतलोक जा सकते हो किसी बाबा फकीर या किसी और ने तुम्हें सतलोक में नहीं ले जाना। महापुरुषों ने तो तुम्हें असलियत बतानी है। यदि तुम उनके सत्संग में बैठकर इस भेद को समझ लो, और फिर अपने मन के संकल्पों, विकल्पों से परे जो नाम है उसको समझो :-

नाम रहे चौथे पद माहीं, यह ढूंढे त्रिलोकी मांहीं॥

जब तक नाम पकड़ोगे नहीं, तुम भवसागर से निकल नहीं सकते। हाँ रूप के प्रकट हो जाने से चाहे वह किसी का रूप

हो, तुम्हें दूसरा अच्छा चोला मिल सकता है। दूसरे जन्म में फिर किसी सतपुरुष से तुम्हारा मेल होगा, जो तुम्हें चितायेगा।

मैं सच्चाईपसन्द पुरुष होने के नाते सच्चे हृदय से चाहता हूँ कि जो ट्रस्ट के मैम्बर्स हैं, सेक्रेटरी हैं, प्रैज़ीडैण्ट हैं कि इनका यह जन्म सफल हो, क्योंकि इन्होंने मेरे ऊपर एहसान किया है; मुझे अपना ऋण चुकाने के लिए मेरी सहायता की है। आपको शुभभावना देता हूँ जो ज्ञान मैंने प्राप्त किया है, वह देता हूँ।

सबको राधास्वामी !

राधास्वामी मत और सांख्यदर्शन का सार

परमसन्त हजूर मानव दयाल जी महाराज

वर्तमान विश्व में हर जगह, हर देश और हर महाद्वीप में, अशान्ति, आतंकवाद और हिंसा का साम्राज्य है। कहीं पर रंगभेद के आधार पर,-तो कहीं पर धर्म के आधार पर और कहीं पर राजनीति के आधार पर, मानव, मानव का शत्रु हो रहा है। संयुक्तराज्य अमेरिका विश्व में सबसे समृद्धिशाली देश माना जाता है। यद्यपि वहाँ पर स्पष्टरूप से भेदभाव दिखाई नहीं देता, तथापि जाति और रंग के आधार पर कई बार गोरे और काले नागरिकों में हिंसा उग्ररूप धारण कर लेती है। वहाँ पर कुछ ऐसी संस्थाएँ हैं, जो धर्म और जाति के आधार पर नफ़रत फैलाती हैं और कई बार भिन्न जाति और धर्म वाले लोगों पर आक्रमण करती हैं। उदाहरण के तौर पर वहाँ की एक कट्टरवादी संस्था का नाम KU.—Klux—Klan (कू-क्लक्स-क्लैन) है। इस संस्था के हज़ारों गोरे सदस्य हैं। यह सभी प्रोटैस्टैण्ट ईसाई धर्म से सम्बन्ध रखते हैं। किन्तु यह कैथोलिक-धर्म, यहूदी धर्म और हब्शियों अर्थात् काले लोगों से नफ़रत करते हैं और कई बार उनकी हिंसा भी कर देते हैं। क्योंकि अमेरिका में धर्म की पूर्ण स्वतन्त्रता है, इसलिये इस संस्था को अवैध करार नहीं दिया जा सकता है। इसका मतलब यह नहीं कि अमेरिका के आम नागरिकों में इस

प्रकार की दुर्भावना है। यह संस्था बहुत सीमित है और आम नागरिक इसका समर्थन नहीं करते। सत्य तो यह है कि अमेरिका में हर व्यक्ति को धर्म की पूरी आज़ादी है और साधारणतया कोई भी धर्म दूसरे धर्म का विरोध नहीं करता। ईसाई धर्म का जो व्यापक स्वरूप अमेरिका में है, वह और कहीं नहीं है।

इसके बावजूद भी कुछ कारणों से कभी-२ पूँजीवाद और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता अमानवीय रूप धारण कर लेती है। वृद्धावस्था तो अमेरिका में एक अभिशाप है। वृद्ध माता-पिता अपने परिवार में नहीं रहते, वे या तो पूर्णतया एकान्त में अपने मकान में या फ्लैट में रहते हैं या बूढ़ों के लिए जो निवासस्थान बने हुए हैं, उनमें रहते हैं। प्रायः वे संसार में अलग-थलग रहते हैं और उन्हें मानवीय प्यार की भूख रहती है। उनके इस दुःख को देखकर बहुत दया आती है। इनकी सेवा करना और इनको आश्वासन देना बहुत आवश्यक है। इसी प्रकार अमेरिका में तलाक के कारण लाखों परिवार अत्यन्त दुःखों का अनुभव कर रहे हैं।

मध्य एशिया में धर्म के नाम पर यहूदियों, ईसाईयों और मुसलमानों में लगातार मारकाट, अत्याचार और युद्ध हो रहे हैं। आयरलैंड में ईसा के नाम पर कैथोलिक और प्रोटैस्टैण्ट ईसाई दिन-रात मारकाट में लगे हुए हैं। दक्षिण अफ्रीका में अल्पसंख्यक गोरी जाति काले लोगों पर लगातार अत्याचार और उनका संहार कर रही है। विश्व में कहीं भी पूर्णतया शान्ति दिखाई नहीं देती। ऋषिभूमि भारत में स्थान-२ पर हिंसा का राज्य है। इस दशा को देखकर प्रश्न उठता है कि किस प्रकार मानवता में आत्म-विश्वास ातृभाव, अन्तर्राष्ट्रीयता, सहनशीलता और सद्भावना पैदा हो सकते हैं? यहाँ पर मुझे उस कविता का स्मरण आ

रहा है, जो मैंने 1950 में कोरिया में हिंसक युद्ध के समय लिखी थी :—

कवि से अनुरोध

कवि निज अनुपम गीत सुनाओ।
विश्व शान्ति की ज्योति जगाओ।।
अन्धकारमय जगत् हो रहा।
तुम प्रदीप बन पथ दर्शाओ।।
मानवता दानवता बनकर।
आज हो रही किधर अग्रसर ?
तुम निज कविता की वर्षा कर।
जलती मानवता को बचाओ।।
कवि निज अनुपम गीत सुनाओ।
मानव पर अत्याचार हो रहा।।
मानव ही का शिकार हो रहा।
आज मानवता के नाम पर।।
मानव ही का संहार हो रहा।
कब तक यह दुर्दशा रहेगी।।
कब तक यह संघर्ष रहेगा।
कब तक हिंसा और दानवता।।
मानव का आदर्श रहेगा ?
कवि तुम इस मदान्त मानव को।।
सच्ची मानवता सिखलाओ।
पहुँचे हम सभ्यता शिखर पर।।
वैज्ञानिक उन्नति के स्तर पर।
विध्वंसक आविष्कार कर रहे।।
अणु शक्तियों का प्रयोग कर।
क्या यह संस्कृति की सीमा है ?
इतना तो हमको बतलाओ।
कवि निज अनुपम गीत सुनाओ।।

इन पंक्तियों में जो भाव मैंने आज से चालीस वर्ष पूर्व अभिव्यक्त किये थे, वे आज भी अहमियत रखते हैं। आज भी हिंसा का बाजार गर्म है। स्वार्थ, लालच, ईर्ष्या और द्वेष ने मानव के स्वरूप को बिगाड़ दिया है। मानव की यह दुर्दशा मानव ने स्वयं ही की है। सत्य तो यह है कि मानव अपने वास्तविक स्वरूप को भूल गया है। वह अपने आपको असत्य, अज्ञानी और दुःखी मान रहा है, जब कि वास्तव में वह सत्, चित और आनन्द का भण्डार है। वह अपने आप में पूर्ण है किन्तु रूढ़िवाद और रीति-रिवाज को ही धर्म मानकर वह मायाजाल में फँस गया है, उसे फँसाया गया है। यह मायाजाल धर्म के उन ठेकेदारों ने फैलाया है, जिन्होंने भोले-भाले लोगों को गलत रास्ते पर चलाकर उनके विवेक पर पर्दा डालकर अपने स्वार्थ के लिए और नाम के लिए धर्म को फिरकापरस्ती में बदल दिया है। यहाँ पर धर्म की और मानव की व्याख्या करना आवश्यक लग रहा है। **सच्चा धर्म वास्तव में मानवता धर्म है क्योंकि इस जगत् में देवी-देवता नहीं किन्तु मानव ही पूर्ण है और परमतत्व का साक्षात् स्वरूप है।** मैं आपको पहिले सरल भाषा में धर्म की व्याख्या दूंगा और उसके बाद मानव के स्वरूप और मानवता धर्म की चर्चा करूंगा।

आम तौर पर धर्म को फिरका या संस्था माना जाता है। इसी दृष्टि से हिन्दु धर्म, इस्लाम धर्म, जैन धर्म, बौद्ध धर्म, यहूदी धर्म, पारसी धर्म और ईसाई धर्म आदि को ही धर्म का नाम दिया जाता है।

धर्म की यह परिभाषा बहुत संकीर्ण है। इसमें कट्टरवादिता और फिरका-परस्ती है। संस्कृत भाषा में हरएक संज्ञा अर्थात् नाम का अर्थ उस शब्द के अन्दर छुपा रहता है। हर एक संज्ञा अर्थात् नाम किसी न किसी क्रिया एवं

गति से सम्बन्धित रहती है। धर्म शब्द का आधार धृ अर्थात् धारण करना है। जिस चीज़ को धारण किया जाता है, वह आधार होती है। जो कर्म किसी आधार पर किया जाता है या होता है, वही धर्म है। इस जगत् की आधार प्रकृति है जिसे प्रधान या मूला प्रकृति कहा जाता है। इस प्रकृति के तीन गुण अथवा तीन पहलू हैं जिन्हें सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण कहा जाता है। इन गुणों की दो अवस्थाएँ होती हैं। (1) साम्यावस्था (2) विषम अवस्था प्रकृति अपने आप में जड़ है। सभी भौतिक पदार्थ इन्हीं तीन गुणों से निर्मित होते हैं। यदि हम जड़ या चेतन किसी भी वस्तु का विश्लेषण करें, उसमें यह तीन गुण होंगे और तीनों एक साथ क्रियाशील होंगे। सतोगुण अथवा सत् की गति ऊपर की तरफ होती है। वह हल्का होता है। उसकी श्वेत रंग से तुलना की गई है। उसका प्रभाव सुख होता है।

रजोगुण गतिमान् होता है। उसका रंग लाल माना गया है। रजोगुणप्रधान व्यक्ति कर्म में रत हो जाता है। उसका प्रभाव दुःख है। तमोगुश को गुरु अथवा भारी कहा गया है। यह गति को अवरुद्ध करता है। इसे काले रंग से सम्बन्धित किया जाता है।

जब प्रकृति साम्य अवस्था में होती है, उस समय कोई सृष्टि नहीं होती है। तीनों गुण मानो अपने-२ कोष्ठ में सम अवस्था में होते हैं। इनमें आपस में आदान-प्रदान नहीं होता। प्रकृति की इसी अवस्था को प्रलय कहा जाता है। प्रकृति अपने आप में गतिमान नहीं है, न उसके अन्दर चेतना है। इसको गतिमान करने वाला पुरुष ही है, जो शुद्ध और चेतन है। प्रकृति के अन्दर चेतना नहीं होती। किन्तु गति की क्षमता रहती है। (क्रमशः)

दान के द्वारा ईश्वर का साक्षात्कार

परमसन्त हज़ूर मानव दयाल
डा० ईश्वर चन्द्र शर्मा जी महाराज का
मानवता मन्दिर में दिया गया सत्संग (19-7-89)

नहीं सिर्फ शहरों में तू कूबकू है ।
जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है ॥1॥
मेरे दायें बायें मेरे आगे पीछे ।
मेरे साथ में है मेरे रूबरू है ॥2॥
मेरी साँस साँस और दम का हमदम ।
मेरी जान तन है मेरे दूबदू है ॥3॥
है कसरत में वहदत में खिल्ल में ज़ाहिर ।
बनों का है बातिन तू ही मूबमू है ॥4॥
खियाबाने गुलशन में है तू तरावत ।
नमू बर्ग में और फूलों में बू है ॥5॥
रग रग में रेशा खानी ।
तू खुद मैं में मैं है तू ही तू है ॥6॥
अगर नैकदे का है पीरेमुगाँ तू ।
तो तू मैं है और जाम मीना सुबू है ॥7॥
राधास्वामी ने भेद मुझको बताया ।
तेरी जाँ की जाँ है तेरी रूह की रूह है ॥8॥

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्चिज् जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद् धनम् ॥

राधास्वामी !

मेरी अपनी ही आत्मा के स्वरूप सत्संगी भाई और बहनो। सत्संगों की शृंखला में, यह गुरुपूर्णिमा का तीसरा सत्संग है। अभी आपने परम दयाल जी महाराज का टेप रिकार्ड का सत्संग सुना। परम दयाल जी दान की महिमा बता रहे थे। उन्होंने कहा कि दान देने से मन शुद्ध होता है और आत्मा चमकती है। दान देना भी धर्म है। वैसे भी अर्थ, धर्थ, काम, मोक्ष हमारे जीवन के लक्ष्य हैं, चार पदार्थ हैं। ये चारों पदार्थ जीवन के मकसद में अपनी-२ जगह पर महत्त्व रखते हैं। मनुष्य इस जगत् में इसलिये पूर्ण माना गया है क्योंकि वह केवल अविनाशी तत्त्व ही नहीं है, जिसका कोई रंग-रूप न हो, वह केवल आत्मा भी नहीं है, जो कारण शरीर है, या बीजरूप है। वह केवल मन भी नहीं है, जो हमारे शरीर को प्रकट करता है और जिसके अन्दर भक्तिभाव पैदा होता है। मन बहुत महत्त्व रखता है। मन के अन्दर भक्तिभाव इसलिये पैदा होता है क्योंकि हमारे मन का स्वभाव है, अपने आपको किसी चीज़ के साथ जोड़ना। यदि मन ने अपने आपको मालिक के साथ जोड़ दिया, तो भक्तिभाव पैदा हो गया। यदि जगत् के साथ जोड़ दिया, तो मोह हो गया, लोभ हो गया। यही मन हमें नीचे गिराता है और यही मन हमें ऊपर भी उठाता है। गुरु शिष्य को युक्ति बताता है, तरीका बताता है। हम केवल मन भी नहीं हैं, मन के साथ-२ हमारा शरीर भी है। इन्हीं कारणों से मनुष्य को पूर्ण माना जाता है। देवता पूर्ण नहीं हैं, क्योंकि देवता का शरीर नहीं होता। दाता दयाल जी महाराज ने एक शब्द में कहा है।

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

टेढ़े जतन को कर दे सीधा, युक्ति निराली बतला दे।
थोड़े ही में समझा दे तू सत मत पहिचान मिले॥

इसमें गुरु से प्रार्थना की गई है कि मुझे ऐसा तरीका बता दो, जो पुराना न हो, घोर तपस्या का न हो, कर्म-काण्ड का न हो। मुझे थोड़े शब्दों में ही सतमत की पहिचान बता दो। अब ऋषियों ने भी थोड़े शब्दों में बताया कि तुम्हारे शरीर को खुराक की ज़रूरत है। परम दयाल जी महाराज ने भी आपको बताया कि शरीर को स्वस्थ रखने के लिए सात्त्विक तथा हल्का भोजन करो। खाने के लिए मत जीओ, बल्कि जीने के लिए खाओ। शरीर का लक्ष्य है, स्वस्थ रहना। जीवन के लिए चार पदार्थ हैं। अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष। अर्थ कहते हैं धन को। पौष्टिक खुराक के लिए अथवा शरीर को स्वस्थ रखने के लिए धन कमाना ज़रूरी है। इन्सान को क्रोध तब आता है, जब उसकी किसी कामना की तृप्ति में विघ्न पड़े। इसलिये दूसरा पदार्थ है काम की तृप्ति या कामनाओं की तृप्ति। काम की शक्ति हमारे अन्दर है। उसे पूरा करना चाहिए :—

'भक्ति मिले शुभ शक्ति मिले,सत् संगत में गुरु ज्ञान मिले'।

हमें ज्ञान मिला, अपने आपको स्वस्थ रखने का। शक्ति है, काम की। यदि व्यक्ति के अन्दर काम नहीं है, तो वह नपुंसक हुआ। मनुष्य का लक्ष्य है कि धर्म के अनुकूल काम की तृप्ति हो। दाता दयाल जी महाराज कहते हैं कि काम करो, शुभ कर्म करो और दान सुपात्र को दो। अब पता नहीं चलता कि सुपात्र कौन है और कुपात्र कौन है? दग़ाबाज़ आ जाते हैं। गुरु को पता नहीं दान कौन सी कमाई का देते हैं? महाराज जी कहते थे कि ऐसे आदमी का दान मत लो, जिसकी कमाई अच्छी न हो। यह बात ठीक है कि दिखावे के लिए दान नहीं करना चाहिए। जब

दान देने के बाद, तुम्हारा व्यक्तित्व, तुम्हारा मन शुद्ध हो जायेगा, तो तुम मालिक के दर्शन करने के अधिकारी हो जाओगे। जब तुम काम के असूल को नहीं समझोगे, तब तक तुम्हें मालिक के दर्शन नहीं होंगे। मालिक के अथवा ईश्वर के दर्शन का क्या मतलब है ? ईश्वर के दर्शन का यह मतलब नहीं कि तुम्हें उसकी मूर्ति दिखाई दे। दर्शन का मतलब है कि हमारे अन्तर में, जो साक्षीभाव है, जो द्रष्टा है, जो शरीर भी नहीं, मन भी नहीं और आत्मा भी नहीं, इन तीनों के ऊपर खड़ा हुआ जो पवित्र ज़ाते पाक है उसका दर्शन। जब तुम पवित्र हो जाते हो पाक का दर्शन अन्तर में हो जाता है, तो तुम आँखों से भी देखते हुए नहीं देखते। आँखों से आप क्या देखते हैं ? आँखों से आप देखते हैं कि जगत् में भेदभाव है। अन्तर के दर्शन या साक्षात्कार के बारे में दाता दयाल जी महाराज ने बताया है :—

'ज्ञान के तीन रूप हैं स्वामी, अनुभव है इनकी चोटी।
शब्द मिले अनुमान मिले,अनुमान के साथ प्रमाण मिले।'

इन दोनों पंक्तियों में कितना गूढ़ रहस्य छुपा हुआ है ? इस शब्द की व्याख्या आम आदमी नहीं कर सकता। 'ज्ञान के तीन रूप हैं स्वामी' का मतलब है कि ज्ञान को समझने के तीन तरीके हैं। (1) शब्द—अब यहाँ पर शब्द का अर्थ आवाज़ नहीं है बल्कि गुरु की वाणी है। कहते हैं :--

'गुरु वही जो शब्द सनेही।
शब्द बिना और नहीं सेई॥'

गुरु की वाणी उस सर्वाधार की धार होती है। इसलिये सत्संग के अन्दर आप सत्संग सुनतें-२ मस्त हो जाते हैं। यदि सत्संग में मस्ती नहीं आये, तो वाणी आधार से नहीं आ रही है। शब्द सनेही नाम, उस गुरु का है,

जिसकी ज़ुबान में ऐसी कशिश हो, ऐसा माधुर्य हो ऐसा शहद बहद हो कि उसको सुनते-२ आनन्दमय हो जाओ। इसलिये ज्ञान का पहिला रूप है शब्द सुनना। इसी को श्रवण कहते हैं। यही सन्तमत है। इसी सन्तमत का पहिले ऋषि लोग अनुभव कराते थे। गुरु ने अपने अनुभव को जब अपनी वाणी में सुना दिया, तो उसका असर हो गया।

(2) **अनुमान** :—अनुमान का अर्थ है अन्दाज़ा लगाना। इसी बात को स्वामी जी ने कहा है कि शब्द सुन करके, उसमें से मक्खन निकालना।

दर्शन करे वचन पुनि सुने, सुन-२ कर नित मन में गुने।
गुन-२ कर काढ़ ले सारा, काढ़ सार तिस करे अहारा।
कर आहार पुष्ट हुआ भाई, जग भव भय सब गया गँवाई।

'दर्शन करे' का मतलब है कि गुरु को देखे। गुरु के अन्दर परमतत्त्व को मानकर, अपने अन्दर परमतत्त्व का अथवा साक्षी भाव का अनुभव करे। कम से कम गुरु को तो खुदा समझे। आँखों से आँखें मिलाये। गुरु के शब्द सुने, उसकी वाणी सुने। 'सुन-२ कर मन में गुने' उस वाणी को समझो। अपने जीवन पर एक दृष्टि डालो कि गुरु की वाणी सुनकर, समझकर, मन के अन्दर सद्भावना का संकल्प है या नहीं। अपने अन्दर झाँक कर देखो कि क्या तुम गुरु की बताई हुई बातों पर अमल कर रहे हो? यह इन्साफ आपको ही करना है। इसीको कहते हैं अनुमान लगाना, अन्दाज़ा लगाना, विचार करना। 'गुन-२ कर काढ़ ले सारा'। आपने सुना और सुनकर गुन लिया। अर्थात् आपने निश्चय किया कि हम अपनी तरफ से शिवसंकल्प से चलेंगे। इसका प्रमाण कैसे मिलेगा? प्रमाण आपको अमल करने से मिलेगा। 'काढ़ सार तिस करे अहारा'।

आपने गुरु के शब्द को सुना, उसमें से मक्खन निकाला अर्थात् मतलब की बात निकाली और उसका प्रमाण भी यही है कि उस पर अमल किया। अगर तुमने अमल नहीं किया, तो तुम यह क्यों कहते हो कि महाराज हमारा काम नहीं बना ? 'अनुभव है इनकी चोटी' जब तुम इन तीनो बातों पर अमल कर लोगे, तो तुम्हें अनुभव हो जायेगा।

'कर आहार पुष्ट हुआ भाई।
जग भव भय सब गया गँवाई ॥'

जब तुम ऐसा कर लोगे, तब तुम मेरी तरह कह सकते हो कि महाराज जी के एक सत्संग के बाद किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं रहीं। तब आपको कोई भव भय नहीं रहेगा।

'नहीं सिर्फ शहरों में तू कूबकू है।
जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है॥'

तुम्हारे पीछे सर्वाधार की ताकत है। अरे यह जगत् क्या है ? ये डाक्टर क्या हैं ? यह दुनिया क्या है ? कुछ नहीं है ? कुछ नहीं है। तुम सारे सर्वाधार के साथ मिल चुके हो। सारी ताकत तुम्हारे साथ है। तुम्हें कुछ नहीं होगा। अनुभव होता क्यों नहीं ? क्योंकि हम उस सर्वाधार की हस्ती को न मानकर, अपनी हस्ती को बड़ा मानते हैं।

जहाँ तक दान की बात है, परम दयाल जी महाराज ने कहा कि दान दो। यदि दान आप दिखावे के लिए दोगे, तो आपको मालिक के दर्शन नहीं होंगे।

एक लक्ष्मी चन्द नाम के बड़े भारी सेठ थे। वह बनारस में रहते थे। उन्होंने अपने गुरु से नाम लिया। गुरु जी ने कहा, "तुम नाम जपते रहना, तुम्हें मालिक के दर्शन होंगे।" सेठ लक्ष्मी चन्द भगवान् कृष्ण के दर्शन करना

चाहते थे। सेठ जी को 15 साल हो गये, नाम जपते-२, लेकिन भगवान् कृष्ण के दर्शन नहीं हुए। 15 साल के बाद गुरु जी आये। सेठ जी ने कहा, "महाराज! 15 साल से नाम जप रहा हूँ अच्छे-२ काम करता हूँ, लेकिन भगवान् के दर्शन नहीं हुए।" गुरु जी ने कहा, "तूने कौन-२ से अच्छे काम किये हैं, बता?" सेठ जी ने कहा, "महाराज! मैं दान देता हूँ। मैंने स्कूल बनवाये। हस्पताल बनवाये। धर्मशालाएँ बनवाईं। मन्दिर बनवाये, मन्दिरों में ठाकुर जी की मूर्तियाँ लगवाईं। मैंने मन्दिर में पुजारी रखे हुए हैं। महाराज! मैंने अब एक लड़कियों का कालिज खोला है। उसके उद्‌घाटन के लिए गवर्नर साहिब को बुलाया है।" गुरु जी समझ गये कि सेठ दिखावे के लिए ही दान देता है, जिससे इसका मन शुद्ध नहीं हुआ। गुरु जी ने सेठ जी से कहा, "पहिले एक बात बताओ। तुमने मन्दिर बनवाने में कितना रुपया खर्च किया?" सेठ जी ने कहा, "दो लाख।" गुरु जी ने कहा, "तुमने अपने मकान में कितना रुपया खर्च किया?" उसने कहा, "दस लाख।" गुरु जी ने कहा, "मन्दिर बड़ा हुआ या तेरा घर बड़ा हुआ?" फिर गुरु जी ने पूछा, "ठाकुर जी के गहने कितने के हैं?" उसने कहा 25 हज़ार के।" "और तेरी पत्नी के गहने कितने के हैं?" उसने कहा, पाँच लाख के।" गुरु जी ने कहा, "ठाकुर जी बड़े हुए या तेरी पत्नी बड़ी हुई?" फिर गुरु जी ने पूछा' "तुम ठाकुर जी के ध्यान के लिए कितना समय देते हो?" उसने कहा, "15 मिनट।" गुरु जी ने कहा कि सारा दिन तो तुम पैसे कमाते हो और ठाकुर जी के लिए सिर्फ 15 मिनट ही देते हो। तुम्हें कैसे दर्शन हो सकते हैं? तुम दान भी दिखावे के लिए देते हो। यही कारण है कि तुम्हें मालिक के दर्शन नहीं हुए। तुम दान दिखावे के लिए मत

दो। दान ऐसा दो कि एक हाथ दे, और दूसरे हाथ को पता भी नहीं चले। तुम दिखावा छोड़ दो।" सेठ जी के बात कुछ समझ में आ गई। उसने कालिज के उद्घाटन के लिए गवर्नर साहिब को न बुलाकर अपने गुरु जी से ही उद्घाटन करा दिया। गुरु जी तो चले गये और चलते समय कह गये कि दिखावा मत करना। अपने मन को शुद्ध करना, तभी तुम्हें मालिक के दर्शन होंगे। एक कालिज और खुलने वाला था। उस कालिज के मैनेजिंग कमेटी वाले दान लेने के लिए सेठ के पास आये। सेठ जी ने कहा, "मेरी तरफ से एक सौ रुपया तो पब्लिक में बता दो लेकिन मैं कालिज के लिए एक लाख रुपया गुप्त दान देता हूँ। उसके विषय में मत बताना।" कमेटी वाले तो खुश होकर चले गये। अब अखबारों में छपा कि सेठ लक्ष्मी चन्द जो लाखों रुपया दान में देते थे, उन्होंने इस बार सिर्फ एक सौ रुपया दान में दिया। जब सेठ जी ने अखबार में पढ़ा, तो अन्दर से खुश हुए कि उन्होंने गुरु जी की आज्ञा का पालन किया। अब सेठ जी का मन कुछ शुद्ध होना शुरू हुआ। एक बार सेठ जी गंगा के किनारे स्नान कर रहे थे। उन्होंने देखा कि एक नौजवान डूब रहा है। सेठ जी को तैरना आता था, वह तुरन्त कूद गये और लड़के को बचा लाये। लोगों ने वाह-२ की। सभी लोग इकट्ठे हो गये। पत्रकार भी आ गये। पत्रकारों ने कहा "आपने बड़ा बहादुरी का काम किया है। हम आपका इण्टरव्यू लेना चाहते हैं। हम आपको इनाम दिलवायेंगे, आपकी शान होगी।" मगर सेठ जी वहाँ से मौका पाकर भाग निकले और अपने घर आ गये। अब अखबार में छपा कि एक ऐसा भी व्यक्ति है, कि जिसने डूबते हुए को बचाया, अच्छा काम किया, मगर अपना नाम तक नहीं बताया। जब सेठ जी ने अखबार में पढ़ा, तो बहुत

खुश हुए। अब उनका मन शुद्ध हो गया। मन के शुद्ध होते ही उन्हें मालिक के दर्शन हो गये।

मालिक का साक्षात्कार तब होता है, जब किसी दिखावटी दृष्टि से दान नहीं दिया जाता। अब दान के लिए धन भी शुद्ध होना चाहिए। यही बात परम दयाल जी ने दाता दयाल जी को कही। धाम में राम बुझारत सिंह आया करते थे, जो रेलवे में स्टेशन मास्टर थे। वह रेलवे का सरकारी पैसा चुराकर धाम में दान देते थे। परम दयाल जी को जब यह बात पता लगी, तो उन्होंने दाता दयाल जी से कहा, "दाता ! तेरा धाम उजड़ जायेगा क्योंकि इसमें चोरी का पैसा लग रहा है।" दाता ने परम दयाल जी की चुनौती को स्वीकार किया लेकिन एक शब्द में उन्होंने परम दयाल जी को कहा :—

मैं नहीं पूछूँ तू कैसा है, कैसी करे कमाई।
फूल प्रसाद कहाँ से लाकर, गुरु की भेंट चढ़ाई।।

दाता दयाल जी महाराज ने परम दयाल जी से कहा, "वह तुम्हें पापी दिखाई देता है लेकिन मुझे वह पापी दिखाई नहीं देता। वह मुझे प्यारा है। राम बुझारत तो मेरे पास मालिक को मिलने के लिए आया है। वह तो दीनहीन है। मैंने पापियों के लिए ही जन्म लिया है। मैं खुद पापी हूँ, पापी के साथ मैं भी तर जाऊंगा। इधर सच्चाई है और उधर प्रेम है। यदि उसकी झुठाई है तो वह प्रेम के अन्दर धुल जायेगी। मैं तो उसके भाव का भूखा हूँ। इसलिये तुम इस बात पर ध्यान मत देना।" दाता दयाल जी महाराज जिस अवस्था पर पहुँच कर कहते हैं, कि पाप, पुण्य कुछ नहीं है, वह आखिरी अवस्था है। इसलिये इस शब्द में कहा है :—

जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है।

यह अवस्था आती है लेकिन तब आती है, जब तुम्हारा मन मालिक के प्रति, सद्गुरु के प्रति साफ़ हो। अगर तुम सच्चे हो, तुम्हारा मन साफ़ है, तो तुमने लाख अपराध किये हैं, लाख पाप किये हैं, वे सब धुल जायेंगे। संसार में तो झूठ भी है और सच भी है। निन्दा भी है और स्तुति भी है और तुम्हें जगत् के अन्दर इन सब द्वन्द्वों से गुज़रना पड़ेगा। यदि आपका सद्गुरु से सच्चा प्रेम है, तो यह द्वन्द्व आपको तंग नहीं करेगा। फिर आपकी दृष्टि ऊँची होती जायेगी :—

मेरे दायें बायें मेरे आगे पीछे।
मेरे साथ में है मेरे रूबरू है॥
मेरी साँस साँस और दम का है हमदम।
मेरी जान तन है मेरे दूबदू है॥

इस हालत पर पहुँचने के लिए, दान ज़रिया है। दान देने से मन शुद्ध होता है। किसी ने कहा है कि धन दोगे, धन मिलेगा, प्यार दोगे प्यार मिलेगा, नफ़रत दोगे नफ़रत मिलेगी, गाली दोगे गाली मिलेगी। परम दयाल जी महाराज स्वयं कहा करते थे :—

'जो ठगेगा वह ठगा जायेगा।'

प्रेम ही आपके द्वन्द्वात्मक कर्मों को, पापों को दूर कर देगा क्योंकि आपने दान दिया और लेने वाले ने ले लिया, तो वह आपको आशीर्वाद देगा। दान लेने वाला दान देने वाले से ऊँचा होता है। तुम मुझे दान देते हो, अगर मैं ठुकराता चला जाऊँ, तो तुम्हारे मन को ठेस लगेगी। मैं महापापी हूँ, यदि मैं तुम्हारे दान को नहीं लेता। सबसे बड़ा पाप किसीको ठेस पहुँचाना है। यदि कोई श्रद्धा से लाया

है और तुमने उसे ठुकरा दिया,तो जितने भी तुमने पुण्य किये हैं, वे सब समाप्त हो जायेंगे क्योंकि लेने वाले के स्वीकार करने से देने वाले की आत्मा को शान्ति मिलती है। तुम आत्मा से आत्मा को ऊँचा उठाओ। किसी के विश्वास पर लात मत मारो। किसी के विश्वास पर लात मारने से तुम दूसरे का नहीं बल्कि अपना ही नुकसान कर रहे हो। इसलिये दान देने वाले से दान लेने वाला महान् है। किसी की दी हुई चीज़ को सहज में स्वीकार करो। हाँ एक बात अवश्य है कि यदि देने वाला तुम्हें शुभसंकल्प से दे, उसको स्वीकार करो। अगर तुम्हें कोई बुरी चीज़ दे रहा है, गाली दे रहा है, निंदा कर रहा है, तुम उसको स्वीकार मत करो। तुम गाली देने वाले के, निंदा करने वाले के प्रति श्रद्धा रखो, तुम उसके प्रति प्रेम भेजो, उसकी भेजी हुई हर बुरी चीज़ तुम पर असर नहीं करेगी। तुम पवित्र रहोगे। इस तरह से जब आपको अनुभव होगा, तब आपको उस अवस्था में अपने दायें, बायें वह मालिक दिखाई देगा। इससे आपका जीवन समता का हो जायेगा। और आप दोपने के द्वन्द्व से ऊपर उठ जायेंगे :—

है कसरत में वहदत में खिल्लत में ज़ाहिर।
बनो का बातिन तू ही मूबमू है ॥

कसरत का अर्थ है अलग-२ होना। जैसे एक आदमी दूसरे आदमी से नहीं मिलता। दो जुड़वाँ बच्चे भी एक जैसे नहीं होते। इसलिये कहा है :—

सबका सबमें सबसे न्यारा।

सब मनुष्य एक जैसे नहीं हैं। सभी प्राणियों का मनुष्यों का शरीर, मन, बुद्धि, आदत अलग-२ हैं। लेकिन इन सबके पीछे एक चीज़ है जो हम सबको एक बनाती है,

और वह है प्रेम। प्रेम है परमतत्त्व की धार। बाहर से हम अलग-२ हैं लेकिन अन्दर हम एकत्व हैं, जब हम प्रेम का अनुभव करें, इसको कहते हैं वहदत या एकपना। अनेकत्व में एकत्व है और एकत्व तब होगा, जब आपकी प्रेम की दृष्टि होगी। जब प्रेम की दृष्टि होगी, तब आपको बाहरी भेदभाव दिखाई नहीं देगा।

खियाबाने गुलशन में है तू तरावट।
नमू बर्ग में और फूलों में तू है॥
तेरी ही है रग रग में रेशा रवानी।
तू खुद मैं में मैं है तू ही तू में तू है॥

दाता दयाल जी महाराज के कहने का मतलब है कि जिसको तुम ढूँढ़ रहे हो, वह तुम्हारे रेशे-२ के अन्दर है। कहीं बाहर जाने की ज़रूरत नहीं है। वह तुम्हारी रग-२ में रेशे-२ में रवाँ है। यह प्रेम की पराकाष्ठा है। इसीलिये प्रेम पर चलने वाले के सभी कर्म समाप्त हो जाते हैं। उसके लिए आवागमन नहीं है। उसे हर हालत में, हर चेहरे में, हर व्यक्ति में, उसी मालिक का रूप दिखाई देगा।

अगर मैकदे का है पीरे मुगाँ तू।

दाता के कहने का मतलब है कि मैकदा या शराब-खाने के अन्दर भी एक गुरु बैठा होता है। गुरु कौन है? गुरु वह है, जो सबको साक्षीभाव से देखे दुनिया में जो कुछ भी हो रहा है, गुरु पर उसका असर नहीं होता। एक बात याद रखो कि सद्गुरु के कर्म, आम आदमी के कर्मों की तरह नहीं होते हैं। हालाँकि सद्गुरु जानबूझ कर कोई ऐसा कर्म नहीं करता, जिसका परिणाम बुरा हो। क्योंकि वह प्रत्येक कर्म सद्भावना से करता है। फिर भी यदि सद्गुरु के किसी कर्म से, दूसरे व्यक्ति को दुःख पहुँचता है, तो उसके दुःखी मन की Radiation सद्गुरु पर असर नहीं

करेगी। इसी प्रकार उसके किसी अच्छे कर्म से, यदि किसी-का भला होता है, तो उसका अच्छा फल या Radiation भी सद्‌गुरु पर असर नहीं करती। कहते हैं कि गुरु के अच्छे कर्मों का फल दायीं तरफ होता है और बुरे कर्मों का फल बायीं तरफ होता है। यदि सत्संगी बुरी भावना से आया है, तो वह बुरा फल ले जायेगा, यदि अच्छी भावना से आया है, तो वह अच्छा फल ले जायेगा। लेकिन तुम तो प्रेम की भावना से आओ।

अगर मैकदे का है पीरे मुगाँ तू।
तो तू मैं है और जाम.मीना सुबू है॥

साकी सबको शराब पिलाने वाली होती है, लेकिन खुद नहीं पीती, केवल शराब पीकर मस्त होने वालों का तमाशा देखती है। मेरे विचार में साकी शब्द संस्कृत के 'साक्षी' शब्द का अनुवाद है। गुरु साक्षी होता है।

'अगर मैकदे का है पीरे मुगाँ तू' पीर कहते है गुरु को। शराबखाने में भी गुरु बैठा हुआ है। इसलिये शराब भी तू है और पैमाना भी तू है। जब ऐसा अनुभव हो जाता है, तो किसी चीज़ में बुराई नहीं दिखाई देती। शराबखाने की शराब तो अर्गवानी शराब है, लेकिन यह शराब तो भक्ति और प्रेम की है। यहाँ बैठा हुआ जो साकी है, वह इस तरह से आपको शराब पिलाता है कि आपकी तार, आपकी सुरत मालिक से मिली रहती है। जिस समय साकी शराब पिलाती है, तो सभी की निगाह साकी की तरफ होती है। सब चाहते हैं कि वह उनके पास आये, लेकिन साकी उसी तरफ जाती है, जिसकी ज़रूरत ज़्यादा होती है। एक शेर में कहा है :—

सबकी साकी पे नज़र हो, यह तो ज़रूरी है।
सब पर साकी की नज़र हो, ये ज़रूरी तो नहीं॥

यदि आपका पैमाना खाली होगा, तभी सुराही आपके पास आयेगी। किसी ने कहा है :—

सिर के बल आती है सुराही पैमाने के पास।

आप साकी अर्थात् गुरु की तरफ देखते रहो। जिस समय आपको ज्यादा जरूरत होगी, उसकी मेहर की दृष्टि आप पर पड़ जायेगी।

मैंने आपको कल बताया था कि सद्गुरु का प्यार हरएक के लिए बहुत गहरा है। लेकिन हर व्यक्ति का नमूना अलग-२ है। यह प्रेम का रास्ता है। आपके प्रेम से वशीभूत होकर,वह परमतत्त्वाधार बन्धुआ बनकर आता है। सागर भी वह ही है, पैमाना भी वह ही है, शराब भी वह ही है। हर चीज के अन्दर वह ही है। एक बात बहुत अच्छी कही कि तू मैं यह है या मैं तू है। इसका फैसला नहीं हो सकता। यही प्रेम की पराकाष्ठा है।

राधास्वामी ने भेद मुझको बताया।
तेरी जाँ की जाँ है तेरी रूह की रूह है॥

राधास्वामी अर्थात् मनुष्य के चोले में आया हुआ मालिके कुल, जो समय-२ पर अनेक रूपों में आता है, हरएक व्यक्ति के स्वभाव के मुताबिक और परिस्थितियों के मुताबिक उस सच्चाई के भेद को खोल देता है, जिसके जानने के बाद सुनने वाले के कपाट खुल जाते हैं और वह जर्रे-२ में मालिक की झलक का नजारा देखता है। ऐसा अधिकारी प्रेम से ओत-प्रोत, अगाध श्रद्धा रखने वाला शरणागत सत्संगी सहज में ही इस सार भेद को जान जाता है कि मालिके कुल का अंश उसके प्राणों का आधार है अर्थात् जाँ की जाँ है और वही अंश उसकी आत्मा का भी अविनाशी आधार है। दूसरे शब्दों में वह उसकी 'रूह की

रूह' यानि कि आत्मा की भी आत्मा है। यह अनुभूति साधक को राधास्वामी अवस्था पर पहुँचा देती है और वह लौकिक एवं भौतिक जगत् में भी अलौकिक परमतत्व मालिके कुल की झलक को देखता है और उसका जीवन मौज से चलता है। ऐसा जीवन यापन करते हुए, उसके लोक और परलोक सध जाते हैं। मैंने आपको अपने अनुभव के आधार पर सरल शब्दों में दाता दयाल जी के उस शब्द का सार बता दिया है, जो आज के सत्संग के शुरू में साधना ने पढ़ा है। मैं सच्चे दिल से आशीर्वाद देता हूँ कि आप इस सत्संग से प्रेरणा लेते हुए पराभक्ति का अनुभव करें। आज का सत्संग मैं यहीं पर समाप्त करता हूँ।

सबको राधास्वामी !

परमसन्त परम दयाल पण्डित फकीर चन्द जी महाराज के अनुसार दुनिया के वर्तमान संकट का एकमात्र हल है

मनुष्य बनो (BE MAN)

नारायण दास डोगरा

पूज्य परमसन्त, पूर्णधनी, मालिके कुल परम दयाल पण्डित फकीर चन्द जी महाराज हम जैसे लोगों के सुधार के लिए जो शब्द या वाक्य अपने मुखारबिन्द से निकालते थे, वे कितने गम्भीर और सच्चे हैं। उन पर यदि प्रत्येक व्यक्ति चले तो घरों में, समाज में, देशों में तथा विश्व में शान्ति हो सकती है। मैं उनके शब्दों को समझ कर, उन पर चलने की कोशिश कर रहा हूँ। उनके कुछ चुने हुए निम्नलिखित वचन मैं यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ, जो बहुत ही शिक्षाप्रद हैं :—

(1) जो सलूक आप अपने साथ नहीं चाहते, वह दूसरों के साथ हरगिज़ न करें।

(2) नफ़रत को नफ़रत से नहीं प्यार से जीतो, नफ़रत को प्रेम से काटो। प्रेम में एक बहुत बड़ी शक्ति है।

(3) नवयुवकों तथा नवयुवतियों को अपने पाँव पर खड़ा होना चाहिए।

(4) इन्सानियत कब आती है? जब हम दूसरों में भी उस मालिक को देखते हैं, सभी मनुष्यों से मनुष्यता का व्यवहार करते हैं और किसीका भी मन नहीं दुखाते।

(5) आपके ख्याल में बड़ी शक्ति है। अतः अपने विचारों को शुद्ध रखो।

(6) जिसके घर में शान्ति नहीं है, वह समाज व मुल्क में शान्ति कैसे ला सकता है ?

(7) घरों में शान्ति रखो। जो घरवालों की सेवा अपना फ़र्ज़ समझ कर करता है, वह जंगल में रहने वाले भेषधारी साधु से अच्छा है।

(8) इन्सानियत ही रूहानियत है। जब तक आपमें इन्सानियत नहीं आती, रूहानियत कैसे आयेगी ? इसलिये पहिले इन्सान बनो (Be Man)।

(9) अपना जीवन क्रियात्मक (Practical) बनाओ।

(10) अपनी संगत अच्छी रखो।

(11) अपनी रहनी, कथनी तथा करनी पर हर समय नज़र रखो। यदि हर समय नज़र नहीं रख सकते, तो रात को सोते समय दिनभर में किये गये अपने अच्छे व बुरे कामों की ओर ध्यान दो, ताकि दूसरे दिन वह गलतियाँ फिर न हों।

(12) औलाद को औलाद के ख्याल से पैदा करो। खुद्राओ सन्तान समाज व देश के लिए हानिकारक सिद्ध होती है। माता के विचारों का प्रभाव बच्चे के पेट में आने के बाद शुरू हो जाता है। इसकी एक मिसाल दाता दयाल जी महाराज अर्जुन की पत्नी सुभद्रा की पेश करते हैं। जब एक दिन अर्जुन गर्भवती सुभद्रा को चक्रव्यूह में प्रवेश होने की बात बता रहे थे, वह बड़े ध्यान से सुन रही थी। परन्तु जब उन्होंने सुभद्रा को चक्रव्यूह से बाहर निकलने की विधि बतानी शुरू की, तो सुभद्रा को नींद आ गई। उसके पेट में बच्चा अभिमन्यु बाहर निकलने की विधि के बारे में सुन नहीं सका। महाभारत

में आपने देखा कि अभिमन्यु चक्रव्यूह में प्रवेश तो कर गया, परन्तु बाहर नहीं निकल सका और शत्रुओं ने उसे मार डाला। इससे यह सिद्ध होता हैं कि बच्चा माँ के पेट से ही अच्छे या बुरे संस्कार लेकर आता है। अत: माँ को चाहिए कि बच्चे के पेट में आने के बाद वह अच्छे विचार रखे, ब्रह्मचर्य का पालन करे ताकि बच्चा अच्छे संस्कार लेकर पैदा हो।

(13) राश्ट्र को बनाने वाली माताएँ हैं न कि लीडर्ज़्। परन्तु आज के युग में औलाद को औलाद के लिए पैदा नहीं किया जाता, केवल कामभोग के कारण ही सन्तान हो जाती है। इसलिये ऐसे कामी स्त्री-पुरुषों की सन्तान कामी ही होती है, बुरे विचारों वाली होती है वह सन्तान न तो माता-पिता का कहना मानती है न बुजुर्गों की सेवा तथा सत्कार करती है अपने गुरु को मान नहीं देती। उनमें भाईचारा, नि:स्वार्थ प्रेम आदि बिलकुल ही नहीं होते। दया तो वह किसी पर भी नहीं करती। उनको मन पर तो बिलकुल ही काबू नहीं। मनु जी महाराज ने समाज की भलाई के लिए जो सिद्धान्त निर्धारित किये थे, यदि देश के नौजवान और नवयुवतियाँ उन सिद्धान्तों का पालन करें तो समाज सुधर सकता है। परम दयाल जी महाराज बच्चों को अच्छी से अच्छी तालीम, अच्छी से अच्छी खुराक, महापुरुषों तथा सन्तों के सत्संगों को सुनने, अच्छे संस्कारों को पनपाने की सलाह माता-पिता को दिया करते थे। अच्छे संस्कार विशेषकर माताएँ ही डाल सकती हैं क्योंकि बचपन में बच्चे के साथ अधिकतर समय माँ ही बिताती है। राष्ट्र को बनाने वाली वास्तव में माताएँ ही हैं।

(14) परम दयाल जी महाराज फरमाया करते थे कि बुजुर्गों के सामने सदा अदब से रहो। जिस परिवार में बुजुर्गों की कदर नहीं या जिस हकूमत में राजा का अदब नहीं, वह परिवार या हकूमत सफल नहीं हो सकती। अत: बुजुर्गों की इज्ज़त तथा छोटों से प्रेम तथा दया करना सीखें।

(15) आपका वीर्य ही आपका ईश्वर है। वीर्य को व्यर्थ में बरबाद करने वाला व्यक्ति ईश्वरद्रोही है।

(16) अपना जीवन सादा तथा विचार ऊँचे रखो।

(17) झूठ से बचो। परम दयाल जी महाराज युधिष्ठिर महाराजा की मिसाल दिया करते थे कि कभी झूठ न बोलने वाले महाराजा युधिष्ठिर ने भगवान् कृष्ण की सलाह के अनुसार, धर्म की रक्षा करने के लिए ही एक छोटा सा झूठ बोला था कि अश्वत्थामा मर गया। ऐसे सत्यवादी महापुरुष, महान् शासक को भी ढ़ाई घड़ी तक नरक में रहना पड़ा था। हम प्रतिदिन कितने झूठ बोलते हैं, कितनी हेराफेरी करते हैं, इससे हम अन्दाज़ा लगा सकते हैं कि हमारा क्या हाल होगा। कर्म के फल से कोई बच नहीं सकता।

(18) अपनी वासनाओं को जरूरत से ज़्यादा न बढ़ाओ। दु:खी तथा अशान्त जीवों की मदद करो। महान् व्यक्तियों को अपना आदर्श बनाओ। उनकी रहनी से कुछ सीखो। परम दयाल जी महाराज महापुरुषों की रहनी के बारे में कबीर साहिब के निम्नलिखित शब्द दोहराया करते थे :--

दयाधार धर्म को पाले, जग से रहे उदासी।
अपना सा जीव सबको जाने, ताहि मिले पद अविनाशी ॥
सहे कुशब्द वाद को त्यागे, छोड़े गर्व गुमाना।
सत्तनाम ताहि को मिले है, कहे कबीर सुजाना ॥

हम जब तक सन्तों तथा महापुरुषों द्वारा बताये गये असूलों पर नहीं चलते, तब तक विश्व में शान्ति नहीं हो सकती। यदि मनुष्य वास्तव में ही शान्ति चाहता है, तो उसे चाहिए कि वह अपनी जरूरतों को सीमित रखे और दूसरों के कामों में दखल न दे। नेकदिल व पाकदिल व्यक्ति सदा खुश रहता है और खुशी एक खूबसूरत और पाक देवी है। जहाँ खुदगर्ज़ी हो, वहाँ वह एक क्षण भी नहीं रह सकती। वह तो प्रेम के साथ जुड़ी हुई है। जहाँ प्रेम होता है, वहाँ खुशी होती है और जहाँ खुशी होती है, वहाँ प्रेम होता है।

(19) अच्छे भोजन की ओर हमें ध्यान तो देना चाहिए, परन्तु जिह्वा का गुलाम नहीं होना चाहिए। इस बात का सदा ध्यान रखना चाहिए कि हमें खाने के लिए ही जीवित नहीं रहना बल्कि जीवित रहने के लिए ही खाना है।

(20) दुनिया में यदि बच्चों की तरह जीवन व्यतीती करोगे तो सुखी रहोगे।

(21) **अपने बच्चों को नामदान दिलाने के बजाय उनके चरित्र का निर्माण करो।**

(22) अज्ञान ही के कारण मानवजाति भिन्न जातियों, फ़िरकों तथा पन्थों में बँट गई है और पूरी मानव-जाति इस समय घोर संकट में है। इस संकट से मुक्ति पाने का एकमात्र उपाय है जातीय, धार्मिक तथा राष्ट्रीय भेदभावों को मिटाकर मानवता धर्म के असूलों पर चलना।

(23) सौ बरस की इबादत से ढ़ाई घड़ी का सत्संग बेहतर है।

(24) साधु, सन्त, पैगम्बर, देवता या नेता कोई भी क्यों न हो, अपने कर्मों तथा संकल्पों का फल सबको ही भोगना

पड़ता है।

(25) ईश्वर तीन प्रकार से आपमें उपस्थित है :—

(1) आपका वीर्य, जो बच्चे पैदा करता है।

(2) आपका संकल्प—जैसा ख्याल वैसा हाल।

(3) प्रकाश—रौशनी या ज्योति, जो रचना करती है।

(26) जो शिकायत करते रहते हैं वह दुनियादार हैं, जिनको शिकवा ही नहीं वह महरमे असरार हैं।

परम दयाल जी कहा करते थे कि जब तक दुनिया इन्सानियत की शिक्षा को नहीं अपनाती, जाति, धर्म, लिंग, राष्ट्र तथा रंगभेद से ऊपर नहीं उठती और हकूमत मानवता धर्म के असूलों पर नहीं चलती तब तक कोई दूसरा उपाय विश्व में शान्ति नहीं स्थापित कर सकता। मेरी यह भविष्यवाणी है कि अगर दुनियावालों ने इन्सानियत को अपनाकर, अपनी सम्भाल नहीं की तो उनकी यह सुन्दर दुनिया तबाह हो जायेगी, बरबाद हो जायेगी, कोई भी शक्ति उसे इस तबाही से बचा नहीं सकती न धर्म, न सन्त महात्मा न ही अवतार।

क्या हर मज़हब का मक़सद ईश्वर की पूजा करना ही है ? नहीं, बिलकुल नहीं। हरएक मज़हब का मक़सद है इन्सान को सुख और शान्ति प्रदान करना। मौलाना रूमी फरमाते हैं कि देखा-देखी की पूजा इन्सान को गुमराह बना देती है। दाता दयाला जी फरमाते हैं।

"किसकी तलाश है जो हर रूबरू है। यह जुस्तजू नहीं है तौहीने जुस्तजू है। ईश्वर तो हर समय तुम्हारे पास रहता है। उसकी खोज करना उसका अपमान करना है।" परम दयाल जी फरमाते थे, "जो कुछ भी तुमको मिलता है, वह राम, रहीम, खुदा या ईश्वर नहीं देता, बल्कि यह तुम्हारी अपनी ही प्रबल इच्छाशक्ति से ही प्राप्त होता है। जब आपके मन में किसी भी चीज़ को पाने की प्रबल इच्छा होती है,तो मालिके कुल की दया की धार उमड़-२ कर उसको पूरा कर देती है।" परम दयाल जी अपना सच्चा अनुभव बता कर कहते थे कि वह सच्चाई का दावा नहीं करते।

पत्र 1

होशियारपुर
20-8-90

परम पुरुष पूर्णधनी मालिके कुल, परमतत्त्वाधार

परम पूजनीय प्रातःस्मरणीय महाराज जी,
चरणस्पर्श एवं राधास्वामी ।

सेवा में,

सविनय निवेदन यह है कि आपके हाथ की लिखी हुई आशीर्वाद और चेतावनी से भरपूर चन्द पंक्तियाँ पढ़ीं। पढ़कर मेरा मन न जाने आपकी कितनी ही उदारता व दया के समुद्र में गोते लगाता रहा, लेकिन कहीं भी थाह न पा सकी और अन्त में आपके ध्यान और सुमिरन में लग गई। आप तो क्षमा, दया, करुणा, उदारता आदि का ऐसा अथाह सागर हैं, जिसका पार पाना या समझना वश की बात नहीं है। सच तो यह है कि शब्द पढ़ना भी मेरे वश में नहीं है। सच मानिये मैं तो एक बाँस की पोली लकड़ी हूँ, जो आपके बजाने पर ही बजती है। आप जैसा चाहें, उसे बजायें। यह आपकी बहुत बड़ी उदारता तथा दया है कि शब्द आप पढ़वाते हैं, तारीफ मेरी करते हैं। मैं आपके ऋण से कैसे मुक्त हो पाऊंगी ?

आपके बिना मन्दिर सूना है। पता नहीं कि मुझे ही लगता है या सबको लगता है। मुझे तो ऐसा लगता है :—

'जैसे किसी सूने मन्दिर में बैठा कोई पुजारी।'

आपके आने का इन्तज़ार कर रही हूँ। ऐसा लगता है कि 21 सितम्बर के आने में कई युग पड़े हैं। मेरी आँखें मन्दिर नहीं देखतीं, बल्कि मन्दिर का फाटक देखती हैं, जहाँ से आप आयेंगे। आपने लिखा है :—

'ढूंढ़ मुझको अपने मन में, मैं तो तेरे पास हूँ।'

आपकी बात सही है। लेकिन मैं तो प्रतिदिन दर्शन, सेवा, आपका संग, आपकी वाणी सुनना चाहती हूँ। इसके अतिरिक्त मुझे संसार में कुछ नहीं चाहिए।

मैं आपसे हाथ जोड़कर एक बात पूछना चाहती हूँ कि मुझे कितनी परीक्षाएँ व अग्निपरीक्षाएँ और देनी हैं! मेरी परीक्षाओं का अन्त कब है? मैं जानती हूँ कि मुझे यह सवाल नहीं पूछना चाहिए, लेकिन अब मैं आपमें विलीन होना चाहती हूँ। विलीन करना आपके हाथ में है। मैं सुख-दुःख, झूठ-सच, द्वन्द्व आदि के जगत् में रहना नहीं चाहती दोनों वक्त समाधि में बैठती हूँ और यही चाहती हुँ कि आपसे अलग होने का एहसास न हो। आप इस सम्पूर्ण विश्व के मालिक हैं। यह सारी कायनात आपमें ही सिमटी है। मैं भी आपमें ही समाना चाहती हूँ। यह तो मेरा अधिकार है, जिसे आपको देना ही है।

आपके सत्संग लिख रहीं हूँ। लंगर पर तथा स्कूल पर आपकी बड़ी कृपा है। आपसे एक विनती है कि पहिली नवम्बर को मुझसे लंगर लेने की कृपा करें। मैंने इस पत्र में हज़ारों गलतियां की हैं। मूर्खतावश अनेकों गलत बातें भी लिख दी होंगी। आप कुल के मालिक हैं। इस छोटे से जीव को क्षमा करने की कृपा अवश्य करें। मेरा तथा माँ का आपको, पूज्य माता जी को चरणस्पर्श एवं राधास्वामी।

पत्रोत्तर की प्रतीक्षा में। साधना

पत्र 2

परमपूज्या जगत्-जननी माता जी

चरणस्पर्श, राधास्वामी!

सेवा में,

सविनय निवेदन यह है कि आपके आशीर्वाद की हस्त-लिखित चन्द पंक्तियाँ पढ़ने को मिलीं। मेरा मन खुशी से

भर गया। जितनी ममता अपने बच्चों (सत्संगियों) के प्रति आपके हृदय में है, उतनी देखने को बहुत कम मिलती है। इसलिये परमतत्त्व आधार ने आपको अपनी अर्द्धांगिनी बनाकर जगत्-माँ के पद पर आसीन किया। मेरा विश्वास है कि आपके अतिरिक्त इस पद को और कोई सुशोभित नहीं कर सकता था। मेरा परम सौभाग्य है कि आप जैसी ममतामयी माँ का साया तथा आशीर्वाद मेरे साथ है। मेरी हार्दिक इच्छा है कि मेरी अन्तिम साँस तक यह आशीर्वाद बना रहे तथा मेरा बाकी का जीवन आपकी छत्रच्छाया में ही व्यतीत हो जाये।

यह पढ़कर बहुत खुशी हुई कि आप शरीर से स्वस्थ, मन से प्रसन्न और आत्मा से आनन्दित हैं। इस मन्दिर को तथा इस मिशन को आपकी बहुत ज़रूरत है। परम पूज्य महाराज जी को भी आपसे आत्मिक बल तथा प्रेरणा मिलती रहती है। आपका सहयोग पूज्य महाराज जी के लिए बहुत ज़रूरी है। आपका अभाव मन्दिर में बहुत खटकता है जो अनुशासन आपके सामने रहता है वह अनुशासन आपके बाहर जाने के बाद मन्दिर में नहीं रहता है। मन्दिर के समाचार आपको शब्दानन्द भाई साहिब से मिल जायेंगे। राजकुमारी बुआ जी की आँख का औपरेशन हुआ है, अब वह ठीक हैं आपको राधास्वामी कहती हैं।

माता जी अगर आपका बाज़ार जाना हो तो महाराज जी के लिए एक जूसर अवश्य लेती आना दौरे पर बहुत परेशानी होती है। आगे क्या लिखूँ। इस पत्र में हुई ग़लतियों की हाथ जोड़कर क्षमा चाहती हूँ। मेरा और माँ का पूज्य महाराज जी को और दर्शी भैया का चरणस्पर्श राधास्वामी।

साधना

पत्र 3

श्रद्धालु श्री नकुल सैन के भाग्य माता जी तथा हज़ूर मानव दयाल जी के प्रति उद्‌गार

नकुल सैन
म. नं. 559/KH/330
आलम बाग— न्यू श्रीनगर,
लखनऊ।
तिथि 27-9-90

रहनुमाये आशकाँ मुर्शिदे कामिल
वक्त के सद्‌गुरु मानव दयाल जी
मातेश्वरी जगत्-जननी के चरणकमलों में

1) जगजननी माँ इस बच्चे का दण्डवत् प्रणाम स्वीकार करो।
आँसुओं के चन्द फूल पिरोये, चरणों में स्वीकार करो।
न मैं आरती पूजा जानूँ न मैं जानूँ तप ज्ञाना ॥
नज़र करम दी करो हे माता भवसागर मैं तर जावाँ ॥

भावना

2) मानव मन्दिर होशियारपुर में एक निराला खेल हुआ।
भक्ति और भगवन्त का देखो एक जगह ही मेल हुआ ॥
जग के कारण तारन तरने में, दोनों ही पार्ट निभाते हैं।
जो भी चरण शरण में आया, जीवन उसका सफल हुआ ॥

मानव दयाल जी के चरणों में

1) तुम जान की भी जान हो, महबूब हो जहान के।
रूहे ज़मीं पे चमक रहे, चाँद हो आसमाँ के ॥
हैं जब तक कायम मेहरोमाह दरखशाँ।
रहो मालिक बने कोन ओ मकाँ ॥
चन्द हरुफ हज़ूर की ख़िदमत आलिया में अर्ज़कर

रहा हूँ। मैं 1929 से 1947 तक लाहौर में रहा, वहीं पढ़ा और नौकर हुआ। लेकिन कितना बदकिस्मत हूँ कि महर्षि जी से मेरी भेंट न हो सकी। क्योंकि गोस्वामी जी का **फर्मान है :—**

बिन हरि कृपा मिलें नहीं सन्ता।

इस पर एक और अभाग्य यह हूआ कि 1952 से लखनऊ में रह रहा हूँ इस अवधि में हज़ूर परम दयाल जी कई मर्तबा यहाँ तशरीफ लाये होंगे,मगर उनसे भी मेल न हो सका। यह तो सौभाग्य की बात है किसी सत्संगी ने मुझे उनकी शताब्दी पढ़ने को दे दी, तो मेरी आँखें खुलीं। तीसरी बात यह है कि आप कई दफा लखनऊ आये होंगे, लेकिन आपसे भी मेल न हो सका।

"सन्त मिलन सम सुख कोऊ नाहीं।"

कविता लिखने पर भी हज़ूर मेरे साथ एक कौतुक ही हुआ। जैसे कोई शक्ति मुझसे लिखवा रही थी। जैसे कोई हाथ पकड़कर लिखवा रहा था। कभी-२ इस नाचीज़ दास को भी याद कर लिया करें। इस वक्त उम्र भी 75 साल की है।

"वरना मैं क्या हूँ, मेरी हस्ती नापायेदार क्या ?
चरणकमलों में बैठ जाने का मन है किया ॥"
मालिके कुल सनफाँ उल आरफीन।
रहनुमाए ज़माना महबूबे आशफाँ ॥
मुर्शिद कामिल दरहम्द हज़ूर शाहे फकीराँ।

दाता दयाल अनवारे जहाँ फकीर चन्द जी के चरण-कमलों में कविता में एक अरीज़ा।

1) रक्स करता हुआ एक चाँद ज़मीं पर आया।
आन ही आन में घर-२ था उजाला छाया॥
क्या बयाँ बाबा फकीर तेरी फकीरी का करूँ।
हक़ ने खुद परचमे हक़ आप ही था लहराया॥

2) नवबका दर से हकीकत था दिलगीरों की दिलगीरी था।
हर चाल निराली दुनिया से सरमाया इश्क फकीरी था ॥
तू नूरुल नूर का नूरे नज़र, क्या कोई तेरी सिफ्त करे।
जो जिसने माँगा वो ही दिया,तेरे फैज़ का चश्मा जारी था।

3) एक चाँद आकाश पे चढ़ता है, जो घटता बढ़ता रहता है।
यह चाँद फकीर ऐसा चमका, जो सदा चमकता रहता है।
लासानी चाँद में चाँदनी थी, रूहे ज़मीं रौशन कर।
मानव दयाल में परगट हो, वैसा ही उजाला करता है ॥

4) जो दर्द भरा था सीने में, उस दर्द से दर माँ करते थे।
मुश्किल में कोई आ फँसा, वो मुश्किल आसाँ करते थे ॥
वो दिल था अता कुदरत ने किया,
दुःख किसी का सह न सकते थे।
एक नज़र से जिसको देख लिया,
उसकी तकदीर बदलते थे।

छोटी-छोटी सारगर्भित बातें

— 1 —

त्रिलोक शर्मा हमारा बहुत ही प्रिय धर्मपुत्र है। मानवता धर्म का अनन्य पुजारी है। पिछले साल जुलाई के आसपास जब हम अमेरिका जाने वाले थे और वहाँ मेरे गालब्लैडर की पथरी को निकालने के लिए काफी बड़ा आपरेशन होने वाला था, तो न जाने क्यों भावुकता और प्रेम के वश मैंने प्यारे सत्संगियों के नाम एक छोटी सी टिप्पणी लिख दी कि यदि मैं आपरेशन के बाद वापिस न लौटूं तो आप सदा इस बात को याद रखना कि मैंने आप सबको सदा प्यार किया है और जन्म-जन्मान्तर आप सबको प्यार करती रहूंगी। इस छोटी सी टिप्पणी को पढ़-

कर बहुत से सत्संगियों ने मुझे प्यारभरे पत्र लिखे, जिन्हें पढ़कर मैं रो पढ़ी।

एक दिन दोपहर के समय मैं लेटी शायद सो रही थी कि मैंने अचानक अपने दोनों पाँवों पर किसीके माथे का स्पर्श महसूस किया। मैंने जब आँखें खोलीं तो क्या देखा कि त्रिलोकी मेरे दोनों पाँवों को चूम-२ कर आँसू बहा रहा था। मुझे देखते ही वह फूट-२ कर रो पड़ा। मैं घबरा कर बोली, "क्या बात है त्रिलोक ? घर में सब कुशल तो है ?"

त्रिलोक बोला, "कुशल खाक है माता जी ! आपने मानव मन्दिर में क्या छपवा दिया ? आप हमें छोड़कर जा कहाँ सकती हैं ? हम आपके बगैर कैसे रहेंगे ? अगर आपको जाना ही है तो हमें भी साथ लेते चलिये। हमें भी नहीं रहना है। हम जीकर करेंगे क्या ?" मैं बोली, "प्यारे त्रिलोक ! त्रिलोकी का नाथ होकर तू बच्चों की भाँति रो रहा है ? क्या मैं कोई अमर होकर आई हूँ ? जाना तो एक दिन है ही। इसमें रोने की क्या बात है ? मैं मरने से नहीं डरती। मैं कितनी भाग्यशाली हूँ कि मुझे परमसन्त परम दयाल जी महाराज, मानव दयाल जी महाराज तथा लाखों सत्संगियों का प्यार मिला। इससे अधिक और क्या आकांक्षा हो सकती है ? बस छोटी सी बात पर आँसू बहाने लगे। उठो, पोंछ डालो आँसू।"

त्रिलोक के इस सरल स्वार्थहीन प्यार को देखकर मन में विचार आया कि अमेरिका में बैठे मेरे दोनों पुत्रों ने भी तो यह टिप्पणी पढ़ी होगी। उनकी ममता क्यों नहीं उमड़ी ? उन्होंने तो एक शब्द भी नहीं लिखा और न ही टेलीफोन किया। यह छोटी सी बात विचार करने योग्य है कि उन्होंने ऐसा प्यार क्यों नहीं दर्शाया ? क्या वे मुझे प्यार नहीं करते ? बहुत प्यार करते हैं। पर त्रिलोक का प्यार अलौकिक है।

अब की बार, जब मैं दशहरे के अवसर पर आचार्य केशव प्रसाद वर्मा जज के घर ठहरी थी तो सायंकाल के समय मैं, वर्मा साहिब, सुधा, उनके बड़े साहिबज़ादे सिद्धार्थ जो कि वकालत के अन्तिम साल में हैं), छोटा बेटा पार्थ (जो इञ्जीनियर बनने जा रहा है), हरिवंश जी तथा पवन बैठे गप्पें लड़ा रहे थे। बातों-२ में मैंने सुधा से पूछा, "क्या पार्थ के पहिले वर्ष में अच्छे नम्बर आये हैं? तो सुधा बोलीं, "हाँ माता जी! कल ही इसका परीक्षाफल आया है। आप मानवधाम गई हुई थीं, इसलिये आपको पता नहीं चला। उसके 86% अंक आये हैं।"

मैं बोली "बाप रे! इतने अच्छे नम्बर! मैंने तो ज़िन्दगी भर M.A. तक कभी फ़र्स्ट क्लास नहीं लिया। 86% तो बहुत ही अच्छे नम्बर हैं। मैं प्रातः से आपके पास आई हुई हूँ और इतनी बड़ी खबर आपने मुझे नहीं दी?"

इस पर सुधा और वर्मा जी मुस्करा पड़े। जज साहिब बोले, "माता जी हमने तो यूं नहीं बताया कि कौनसी बड़ी बात है इसमें?"

मैंने कहा, "यह आपकी नम्रता है। बड़ी बात आपके लिए नहीं होगी। मुझे तो बहुत बड़ी बात दीखती है। मुझे बहुत ही प्रसन्नता हुई, बहुत ही प्यार उमड़ा दिल में।" पास में बैठे हुए पार्थ के पास जाकर मैंने उसका माथा चूम लिया और बोली, "पार्थ बेटे, यह तुम्हारी मेहनत का फल है। तुम तो घर में ऐसे रहते हो जैसे कि कोई किसी आश्रम में रहता है। सदा ऐसी ही मेहनत करते रहना बेटे। हमें तुम पर गर्व है।"

भोलाभाला पार्थ मुस्करा दिया। उसकी मुस्कराहट में

मुझे अपने दोनों बेटों की मुस्कराहट याद आ गई। जब वे छोटे थे और परीक्षा पास होने पर अपना रिपोर्टकार्ड नन्हे-२ हाथों में लेकर आते थे और हमें दिखाते थे। मैं ठीक उसी तरह उनके माथे का चुम्बन करती थी जैसे मैंने पार्थ का माथा चुम्बन किया। कुछ भी तो अन्तर नहीं दीखता। निश्छल-निरीह प्रेम में अनायास ही अलौकिक अनुभूति अपने आप हो जाती है।

भाग्य शर्मा

मासिक सन्देश

परमसन्त सद्गुरु हजूर मानव दयाल
डा० ईश्वर चन्द्र शर्मा जी महाराज

मेरी अपनी ही आत्मा के अंश,
परमप्रिय सत्संगियो :
राधास्वामी, परम दयाल जी सहाई !

वैसाखी उत्सव के पश्चात् गुरुपूर्णिमा तक मैं किसी लम्बे दौरे के लिए बाहर नहीं गया क्योंकि गुरुपूर्णिमा के पश्चात् मुझे विदेशी दौरे पर जाना था। हाँ इस दौरान में मई के अन्तिम सप्ताह से 30 मई तक दो-तीन दिन के लिए कन्नौज, दीदारगंज और उसके आसपास के गाँवों का और यमुना नगर का एक छोटा सा दौरा अवश्य हुआ। मुझे रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय बरेली साहित्यिक काम के लिए जाना था। हालाँकि मैंने 1982 से विश्वविद्यालय की सेवाओं से अमेरिका और भारत में अवकाश प्राप्त किया हुआ है अर्थात् प्रोफेसर के पद से रिटायर हो चुका हूँ, फिर भी मेरे अनुभव के कारण उनके विश्वविद्यालय मुझे अपने साहित्यिक क्षेत्र से सम्बन्धित किये हुए हैं। इसलिये जब कभी मैं विदेशी दौरा करता हूँ, तो इंग्लैण्ड और अमेरिका के विश्वविद्यालय मुझे साहित्यिक गतिविधियों से सम्बन्धित करते रहते हैं। रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय बरेली से मेरा सम्बन्ध Ph.d. अर्थात् 'आचार्य की खोज' के लिए मार्गदर्शक एवं गाइड स्वीकृत किया गया

है। कम से कम पाँच स्नातकोत्तर छात्र मेरी देख-रेख में Ph.d. की उपाधि के लिए अनुसंधान का कार्य करते हैं। उनमें से जब कोई छात्र अपना अनुसंधान का निबन्ध पूरा कर लेता है, तो उसकी अन्तिम मौखिक परीक्षा के लिए मुझे बरेली जाना पड़ता है। इसी कारण अप्रैल के अन्त में मुझे इस बार भी जाना पड़ा। क्योंकि बरेली कन्नौज के निकट है, इसलिये छोटा सा कन्नौज का दौरा भी बन गया।

हम एक दिन कन्नौज और एक दिन दीदारगंज ठहरे। दोनों दिन बहुत अधिक संख्या में सत्संगी दूर-२ से सम्मिलित हुए। यद्यपि पहिले हम रात्रि को कन्नौज मकरन्द नगर में ठहरे, दूसरे दिन दीदारगंज सायंकाल का सत्संग हुआ और रात्रि का विश्राम हुआ। तीसरे दिन हम मकरन्द नगर वापिस आ गये और वहाँ प्रातःकाल और सायंकाल सत्संग आयोजित हुए। यहाँ पर दीदारगंज से, पड़ोस के कई ग्रामों से, भट्टाकोठी से, कानपुर से, लखनऊ तथा मिश्रिक तीर्थ से अनेक सत्संगी आये और सत्संगों में उत्साह-पूर्वक सम्मिलित हुए। यहाँ पर यह सूचना देना आवश्यक है कि यू० पी० के मिश्रिक तीर्थ केन्द्र के आचार्य श्री कृष्ण मोहन श्रीवास्तव (मोहन दयाल) और लखनऊ केन्द्र के आचार्य श्री कृष्ण मोहन तिवारी (कृष्ण दयाल) भी पहिले ही दिन मकरन्द नगर पहुँच गये थे। यह दोनों आचार्य सभी स्थानों पर मेरे साथ रहे और वापसी पर हरदोई तक मैटाडोर में हमारे साथ आये।

संक्षेप में, इतना कह देना काफी होगा कि सत्संगों में और सत्संगों के बाद सत्संगियों के सच्चे प्रेम, उनकी श्रद्धा और आस्था का हम पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। यद्यपि समय बहुत कम था, सत्संगियों के प्रेममय आग्रह पर हम लौटते समय हरदोई के रास्ते से आये और उससे पहिले एक

छोटे से गाँव में दो-तीन घण्टे ठहरे। हालाँकि गर्मी बहुत विशद थी और धूप कड़ाके की पड़ रही थी, फिर भी हमें सत्संगियों के प्रेम की ठण्डक के कारण कोई कष्ट महसूस नहीं हुआ। उस गाँव में भी हम दो घरों में गये। मुझे दूसरा छोटा सा टूटा-फूटा मकान बहुत ही अच्छा लगा। उस घर वालों ने प्रेम की गंगा बहा दी और प्रेम की अभिव्यक्ति अश्रुधारा से की। उस गाँव में हमने दाता दयाल जी के शब्द के आधार पर सत्संग भी दिया। गाँव वालों ने दोपहर का खाना तैयार किया हुआ था, किन्तु हमारे पास इतना समय नहीं था कि हम वहाँ खाने के लिए रुकते। इसलिये उन्होंने हमें कुछ खाना साथ ले जाने के लिए दिया। मकरन्द नगर से भी हम कुछ खाना साथ लेकर आये थे। जब हम हरदोई पहुँचे, तो दोपहर के 12 बज चुके थे। आचार्य कृष्ण मोहन तिवारी ने सुझाव दिया कि हरदोई के सार्वजनिक बाग में बैठकर दोपहर का भोजन किया जाये। हमारी मैटाडोर के रथ के संचालक श्री हरिवंश लाल हमें उस बाग में ले गये। धूप कड़ाके की पड़ रही थी। बाग ढूँढ़ते-२ हमें काफी समय लगा। एक बजे दोपहर के बाद हमें दरख्तों की छाया के नीचे एक ठण्डा स्थान मिला, जिसके नीचे हरे घास का कालीन बिछा हुआ था। हमने यहाँ पर बैठकर ठण्डी छाँव के नीचे भोजन किया। श्री कृष्ण मोहन आचार्य, मोहन दयाल आचार्य, हरिवंश लाल ठण्डे पानी की तलाश में गये और थोड़ी देर में हमारे जग और थरमस ठण्डे पानी से भर कर लाये। इतनी देर में आचार्य शब्दानन्द ने और कु० साधना ने भोजन कागज की प्लेटों में सबके लिए एक चादर पर लगा रखा था। सभी ने बड़े आनन्द से भोजन किया। 2 बजे के करीब हम मैटाडोर में बैठ गये। यहाँ पर तिवारी जी

और श्रीवास्तव साहिब हमसे विदा हुए क्योंकि उन्हें बस द्वारा लखनऊ जाना था। मैटाडोर रवाना होने से पहिले तिवारी जी और श्रीवास्तव साहिब बाहर खड़े हुए ऐसे रोने लगे जैसे कन्या की डोली के जाते समय कन्या के घर वाले रोते हैं। उनके यह प्रेम के आँसू उचित थे। 3 दिन के सत्संगों के दौरान में, सत्संगों की जो प्रेमधारा बही थी, वह उनके मन में घर कर गई थी और मैटाडोर के रवाना होते समय वह आँसुओं में परिस्फुटित हो गई। हमने भी अन्तस् से इस सुखद दुःख का अनुभव किया।

हम सहारनपुर से होते हुए रात्रि के 10 बजे के करीब यमुना नगर में श्री रमेश जी के घर पर पहुँचे ? वहाँ हमारी ज़ोरों से प्रतीक्षा हो रही थी और रमेश चन्द जी के सम्बन्धी भी वहाँ पहुँच चुके थे। दूसरे दिन प्रातःकाल छोटा सा सत्संग हुआ, जिसमें सरसोंहेड़ी के भी सत्संगी शामिल हुए। सायंकाल के सत्संग में जगाधरी के सत्संगीपरिवार और सरसोंहेड़ी और सहारनपुर के सत्संगी मौजूद थे, जिनमें श्री राम प्रकाश वोहरा जगाधरी के वकील, श्रीमती कृष्णा प्रधानाचार्या सन्त मानव दयाल पब्लिक स्कूल खिजराबाद, श्री देवदत्त त्यागी रिटायर्ड इन्जीनियर और श्री ज्ञानेश्वर त्यागी सरसोंहेड़ी के नाम उल्लेखनीय हैं। सायंकाल का सत्संग बहुत विशाल पैमाने पर आयोजित किया गया। श्री रमेश चन्द, रामगढ़ के सन्तगति को प्राप्त स्वर्गीय जगन्नाथ गुप्ता के छोटे भाई हैं। यहाँ पर आकर हमें पता चला कि रामगढ़ का गुप्ता परिवार शोकग्रस्त था क्योंकि श्री जगन्नाथ के सबसे छोटे लड़के का 12 मई को सड़क की दुर्घटना से अचानक देहान्त हो चुका था। हालाँकि मैंने होशियारपुर से रवाना होने से पहिले रामगढ़ दो पत्र भेज दिये थे, किन्तु रमेश जी ने बताया कि मेरे वह पत्र किसी

कारण रामगढ़ नहीं पहुँचे। इसलिये मैंने यह निश्चय किया कि तीसरे दिन प्रातःकाल रामगढ़ होते हुए होशियारपुर जायें। श्री रमेश चन्द भी हमारे साथ रामगढ़ तक आये।

ऐसा लगा कि हमारा रामगढ़ आना बहुत ही आवश्यक था। सारा परिवार मेरे पत्र की प्रतीक्षा कर रहा था। मुझे साक्षात् वहाँ पाकर वे गद्गद हो गये। दो घण्टे उनसे इस दुर्घटना के सम्बन्ध में आध्यात्मिक चर्चा करने के बाद सारे परिवार को सान्त्वना हुई। स्वर्गीय श्री जगन्नाथ जी ने चोला छोड़ने से पहिले ही कहा था कि उनका सबसे छोटा लड़का उन्हें बहुत प्रिय है और वह हमेशा उनके साथ रहेगा। मेरा वहाँ जाना इसलिये लाभदायक साबित हुआ क्योंकि वह परिवार इस असमंजस में था कि क्या 3 जून को श्री जगन्नाथ जी की बरसी हर वर्ष की तरह सारे गाँव को भण्डारे पर आमन्त्रित करके मनाई जाये या स्थगित कर दी जाये। मैंने उन्हें परामर्श दिया कि गाँव के लिए भण्डारा न करें। बरसी अवश्य मनायें और केवल बाहर से आये हुए सत्संगियों के लिए भोजन की व्यवस्था करें। उन्हें मेरा यह सुझाव बहुत पसन्द आया और 3 जून को स्वर्गीय श्री जगन्नाथ गुप्ता जी की समाधि पर मनाई जाने वाली बरसी उत्साह से आयोजित की गई।

हम 30 मई को होशियारपुर पहुँचे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस दौरे के दौरान में हमें सख्त गर्मी का सामना करना पड़ा और सभी ने कहा कि ऐसी गर्मी में दौरा नहीं करना चाहिए। मैंने यह अनुभव किया कि यदि मैं इस दौरे पर नहीं जाता, तो कन्नौज के स्वर्गीय मनोहर लाल जी का परिवार और रामगढ़ का स्वर्गीय जगन्नाथ जी का परिवार बहुत हताश होता और यमुना नगर के सत्संगी भी दुःखी होते। जब हम आध्यात्मिकता के सम्बन्ध में बार-२ यह

कहते हैं कि साधक दुःख-सुख, गर्मी-सर्दी, लाभ-हानि, जय-पराजय के अनुभवों को समान समझकर अनुभव करें, तो जिस उद्देश्य को सामने रखकर परम दयाल जी महाराज ने मुझे सत्संगियों की सेवा का काम सौंपा है, उसको अपना कर्त्तव्य समझकर निभाने में मुझे समत्वयोग का पालन करते हुए सत्संग के दौरे को सफल बनाना चाहिए। वास्तव में ऐसा ही हुआ। मनुष्य की संकल्प की शक्ति उसके अन्दर अविनाशी परमतत्त्व के अस्तित्व का प्रमाण है।

प्रश्न यह उठता है कि मनुष्य संकल्प द्वारा कर्म करने में कहाँ तक स्वतन्त्र है। क्या हमारे द्वारा किये गये सभी कर्म पूर्णतया स्वतन्त्र होते हैं अथवा वातावरण एवं परिस्थितियों के वशीभूत होकर के किये जाते हैं ? इस प्रश्न का उत्तर दो दृष्टिकोणों से दिया जा सकता है। एक दृष्टि-कोण नियतिवाद एवं भाग्यवाद है, दूसरा दृष्टिकोण स्वतन्त्र-वाद है। नियतिवाद के मुताबिक संसार की हरएक घटना कार्य-कारण के नियम के आधीन है। हरएक कार्य अथवा घटना का कारण होता है। इसी कार्य-कारण के नियम के अनुसार विज्ञान ने उन्नति की है। कारण के बिना प्रकृति में कोई भी घटना घटित नहीं होती। इसलिये विज्ञान ने हर घटना के कारण को समझकर उस पर नियन्त्रण करके अनेक आविष्कार किये हैं। यदि एक प्रकार की परिस्थितियाँ किसी घटना को घटित करती हैं, तो बार-२ उन परिस्थतियों को दोहराने से उससे सम्बन्धित कार्य, घटना अथवा फल अवश्य घटित होगा। उदाहरण के तौर पर विज्ञान के अनुसार जल तत्त्वकाकारण H_2O अर्थात् हाईड्रोजन गैस के दो भाग और आक्सीजन गैस के एक भाग के मिश्रण का परिणाम है। जब भी हम इस मात्रा में हाईड्रोजन और आक्सीजन गैसों का मिश्रण करेंगे,उस समय इनका परिणाम

तरल जल होगा। इससे यह प्रमाणित होता है कि हरएक घटना विशेष कारण से नियत होती है। जहाँ तक भौतिक पदार्थों और वनस्पति जगत् का सम्बन्ध है, यह नियतिवाद बिलकुल ठीक उतरता है। इसी नियतिवाद के आधार पर ही अन्तरिक्षयान चन्द्रमा पर और अन्य ग्रहों पर पहुँचते हैं और ठीक समय पर वह पृथ्वी पर वापिस आते हैं। जब प्रकृति की सभी घटनाएँ अपने पूर्ववर्ती कारणों से नियत हैं और यन्त्रवत् घटित होती हैं, तो मनुष्य के कर्म भी नियत होने चाहिएँ।

यदि नियतिवाद मनुष्य के सभी कर्मों पर लागू हो सकता है, तो उसके संकल्प द्वारा किये गये कर्म भी यन्त्रवत् होने चाहिएँ। किन्तु ऐसा दिखाई नहीं देता। मान लो कि मैं कपड़े की दुकान पर एक नया सूट बनवाने के लिए जाता हूँ। कपड़ा बेचने वाला मुझे दो रंग के सुन्दर ऊनी कपड़े दिखाता है। मुझे इन दो रंगों में से एक रंग चुनना है। यह निर्णय करने से पहिले मैं अपने मन में संकल्प-विकल्प करता हूँ। पहिले मैं यह सोचता हूँ कि नीला रंग अच्छा रहेगा, क्योंकि नीला वर्ण आकाश का है, आसमानी है और आध्यात्मिक है। फिर मुझे विचार आता है कि नहीं, हरा रंग अच्छा रहेगा क्योंकि यह रंग स्वास्थ्य देने वाला है। मेरे पास इस रंग की नेकटाई भी मौजूद है। थोड़ी देर विचार करने के बाद मैं सोचता हूँ कि हरा रंग अच्छा नहीं। उसमें इस्लामी कट्टरता की बू आती है। मैं यह भी सोचता हूँ कि मेरे पास पुराना हरे रंग का सूट भी है। इस प्रकार संकल्प-विकल्प के बाद मैं यह निर्णय लेता हूँ कि मुझे नीले रंग का कपड़ा खरीदना चाहिए।

मैं यह निर्णय लेने के बाद यह कहने का हक़दार हूँ कि मैंने स्वयं अपनी स्वतन्त्रता से यह निर्णय लिया है।

इसलिये मेरा यह कर्म किसी भी बाहरी परिस्थिति से नियत नहीं हैं। क्योंकि कपड़ा खरीदने से पहिले कोई भी व्यक्ति कार्य-कारणता के नियतिवाद को मेरे इस कर्म पर लागू करके यह भविष्यवाणी नहीं कर सकता कि मैं अवश्य वैसे ही नीले रंग का निर्वाचन करूंगा, जैसे हाईड्रोजन और आक्सीजन की विशेष मात्रा के मिश्रण से जल तत्त्व की भविष्यवाणी की जा सकती है। किन्तु मनोवैज्ञानिक नियति-वादी मेरी संकल्प की स्वतन्त्रता को चुनौती देगा। वह कहेगा कि यद्यपि कपड़े की दुकान में घुसने से पहिले आपने यह निर्णय नहीं लिया था कि आप नीले रंग का निर्वाचन करेंगे, किन्तु आपके शरीर के परमाणुओं ने और आपके अचेतन मन की दबी हुई इच्छाओं ने यह पहिले ही निर्णय कर लिया था कि आप हरे रंग के मुकाबले में नीले रंग को चुनेंगे। आपके कर्म में और जल तत्त्व के उत्पन्न करने के कर्म में अन्तर केवल इतना है कि भौतिक घटना में हमें उन कारणों और परिस्थितियों का पूरा ज्ञान होता है, जो विशेष कार्य को या घटना को जन्म देती है, जबकि आपके तथा-कथित संकल्प की स्वतन्त्रता के कर्म में या सविकल्पक कर्म में हमें आपके सभी शारीरिक, भौतिक और मानसिक कारणों का पूरा ज्ञान नहीं होता। यदि हमें ऐसा ज्ञान हो जाता तो हम ऊपर दिये गये उदाहरण में भविष्यवाणी कर सकते थे कि आप अवश्य ही नीला रंग पसन्द करेंगे। इस दृष्टिकोण को मनोवैज्ञानिक नियतिवाद कहा जा सकता है।

इसका विरोधी दृष्टिकोण स्वतन्त्रतावाद का है। इसके मुताबिक मनुष्य के सविकल्पक कर्म बाहरी परिस्थितियों से पूर्णतया स्वतन्त्र होते हैं। इसलिये हम मनुष्य के व्यवहार की भविष्यवाणी नहीं कर सकते। यदि मनुष्य पशुओं और वनस्पतियों तथा भौतिक घटनाओं की

भाँति अपने कर्मों में बाहरी परिस्थितियों से नियत होता, तो हम उसके व्यवहार के प्रति भविष्यवाणी कर सकते। ऐसा लगता है कि यह दृष्टिकोण ठीक है। किन्तु अगर इस तथ्य को ध्यान से समझने की कोशिश की जाये तो हमें मानना पड़ेगा कि मनुष्य खासकर सविकल्पक (संकल्प की स्वतन्त्रता पर आधारित) कर्मों में सर्वतन्त्र स्वतन्त्र नहीं है। उसके संकल्प पर आधारित कर्म पशुओं के कर्म की भाँति फुटकर नहीं होते। एक कुत्ता किसी बालक की रोटी को तुरन्त छीन लेगा और उसको रोटी खाने से वंचित करेगा। किन्तु एक सोच-समझ वाला मनुष्य ऐसा नहीं करेगा। दूसरे शब्दों में मनुष्य अपनी स्वतन्त्रता में भी सीमित है। यहाँ स्वतन्त्रता का अर्थ बुद्धि के आधार पर अपने कर्मों को विशेष रूप देना एवं उनको अनुशासन के आधीन करना है। यदि मनुष्य सर्वतन्त्र स्वतन्त्र मान लिया जाये, तो न समाज में न राजनीति में और न ही नैतिकता में किसी प्रकार का अनुशासन रहेगा और समाज अस्तव्यस्त हो जायेगा। मनुष्य की स्वतन्त्रता इस बात में है कि वह अपनी स्वतन्त्रता को स्वयं सीमित कर सकता है और कर देता है। इसलिये हम यह कह सकते हैं कि मनुष्य के सविकल्पक कर्म न तो यन्त्रवत् बाहरी परिस्थितियों से नियत हैं और न पशुओं के कर्मों की भाँति तर्कहीन और फुटकर हैं। दूसरे शब्दों में उसके कर्म न तो नियतिवाद के आधीन हैं और न स्वतन्त्रता-वाद पर आधारित हैं, बल्कि वह मनुष्य की आत्मा से प्रेरित होने के कारण आत्म-नियतिवाद के आधीन हैं।

मनुष्य को यही संकल्प की स्वतन्त्रता एवं उसका आत्म-नियतिवादी होना साबित करता है कि उसके अन्दर परमतत्त्व का वह अविनाशी अंश है, जो शारीरिक, मानसिक और आत्मिक अनुभवों से न्यारा है और वही उसका

अविनाशी तत्त्व है। प्रारब्ध कर्म अवश्य प्रभावशाली हैं। सन्त तुलसी दास जी की निम्नलिखित चौपाई भी ग़लत नहीं है :—

कर्म प्रधान विश्व कर राखा।
जो जस कीन्ह सो तिस फल चाखा॥

इसका अर्थ यह नहीं है कि मनुष्य में यह स्वतन्त्रता भी नहीं कि वह इस काल के जगत् से मुक्ति प्राप्त कर सके और कर्म और माया से परे जा सके। ध्यान रहे कि तुलसी दास जी इस विश्व के सम्बन्ध में कह रहे हैं, आत्मा के सम्बन्ध में नहीं। आपका सद्‌गुरु के सम्पर्क में आना एवं उसका सत्संग प्राप्त करना नियत है और आपके प्रारब्ध-कर्म का फल है, किन्तु गुरु के सत्संग को सुनकर आत्म-समर्पण न करना और उसके आदेशानुसार न चलना आपकी अपनी संकल्प की स्वतन्त्रता का परिणाम है। इसलिये राधास्वामी मत के हरएक उस शब्द में जो दाता दयाल जी ने मनुष्य के जीवन को सुधारने के लिए लिखे हैं, सत्संगी के संकल्प की स्वतन्त्रता पर आधारित कर्म का महत्त्व बताया है। उनका निम्नलिखित शब्द ध्यान देने योग्य है :—

कर गुरु की संगत रात दिन, नर जन्म अपना सुधार ले।
दे फैंक माया बोझ सिर से, पग का शीश न भार ले॥
शीश दे तन मन को दे, गुरु भक्ति रतन अमोल ले॥
राधास्वामी भेद बताया, तुमको दिये तराज़ू तोल ले॥

इसी दृष्टिकोण को पुष्ट करते हुए दाता दयाल जी फरमाते हैं :—

नाम मन्त्र से वश में आवे काल कराला नागा।
नाम पाय जो नाम न सुमिरे विष से मरे अभागा॥

सत्संग की महिमा अपार है। आन्तरिक सत्संग एवं अभ्यास करने के बाद भी सद्‌गुरु की संगत ज़रूरी होती है।

मैंने प्रसंगवश राधास्वामी मत के पहिले सोपान सत्संग पर कुछ प्रकाश डाला है। अगले मासिक सन्देश में इसी की और व्याख्या की जायेगी और इसी सोपान की चर्चा जारी रखी जायेगी। जब तक यह चर्चा सहज में चलेगी उसे चलायेंगे, उसके बाद सद्‌गुरु और सत्संग के विषयों की व्याख्या की जायेगी। इस प्रकार यह तीन सोपानों का सिलसिला मेरे प्यारे सत्संगियों को अवश्य प्रेरणा देगा और लाभ पहुँचायेगा।

हाँ ! मैं आपको बता रहा था कि हम 30 मई को रामगढ़ होते हुए होशियारपुर पहुँच गये। केवल दो दिन यहाँ रहने के बाद हमें रामगढ़ के लिए श्री जगन्नाथ जी की बरसी के सन्त सम्मेलन पर जाने के लिए रवाना होना था। पहिली जून को हमें व्यास के सद्‌गुरु हज़ूर चरण सिंह जी महाराज के चोला छोड़ने का दुःखद समाचार मिला। वह भारत में अपने समय के महान् सन्त और महान् ज्योति थे। मैंने दूसरे दिन इसी विषय पर प्रातःकाल सत्संग दिया और उसी प्रातःकाल हम मैटाडोर से चण्डीगढ़ के लिए रवाना हो गये। अभी हम चण्डीगढ़ के निकट मैटाडोर से मुहाली ही पहुँचे थे जब हमारी मैटाडोर के सामने सड़क पर भैंस आ गई। हमारे चालक श्री हरिवंश लाल ने उसे बचाने के लिए ब्रेक लगाया। पीछे से एक बस करीब 80 कि० मी० की रफ्तार से आ रही थी। उसके ड्राईवर ने लापरवाही से ब्रेक न लगाई, जिसके फलस्वरूप उस तेज़ रफ्तार बस ने पीछे से मैटाडोर को ज़बरदस्त धक्का लगाया। धक्का इतना ज़बरदस्त था कि हमने समझा कि मैटाडोर आगे से किसी गाड़ी के साथ टकरा गई है। क्योंकि मैं पिछली सीट पर बैठा हुआ था, इसलिये मैं अगली सीट की पीठ से टकराकर पिछली सीट से टकराया। एक क्षण के लिए मैं

सब्ध रह गया। मेरी पीठ को गहरी चोट आई और मुझे ऐसा लगा कि रीढ़ की हड्डी में गहरा घाव हो गया। मालिक की मौज से ऐसा चमत्कार हुआ कि हमारा मैटाडोर उलटा वहीं और न ही किसी और को चोट आई। गाड़ी के रुकने पर लोग इकट्ठे हो गये और बस के ड्राईवर को कोसने लगे जब वह ड्राईवर मेरे सामने आया और उसने ग़लती महसूस की, तो मैंने सोचा कि यह दैवी दुर्घटना थी। हालाँकि हमारी गाड़ी का काफी नुकसान हो गया था और हम पुलिस को बुलाकर उस ड्राईवर का चालान करा सकते थे, मैंने उसे क्षमा कर दिया और श्री हरिवंश लाल जी को P.G.I. की ओर चलने का परामर्श दिया। क्योंकि मुझे बहुत ज़बरदस्त दर्द हो रहा था और ऐसा लगता था कि शायद पीठ में किसी हड्डी का (Fracture) फ्रैक्चर हो गया है। इसलिये हम सीधे P.G.I. के हड्डी विभाग के अध्यक्ष विश्वविख्यात डाक्टर और मेरे प्रिय सत्संगी ओंकार नरेश नेगी के दफ्तर में गये। वह अपने आसन पर मौजूद थे। उन्होंने तुरन्त मुझे अपने रोग-कक्ष में लिटाकर पूरी तरह से परीक्षण किया और कहने लगे, "महाराज जी! हड्डियाँ तो सब ठीक हैं लेकिन आपकी पीठ के पुट्ठों पर भारी चोट आई है। मैं अभी आपको खाने की दवाई दिये देता हूँ और सायंकाल फिर परीक्षा करूंगा।" मैंने कहा, "मेरे प्यारे ओंकार मुझे कल प्रातःकाल रामगढ़ में सत्संग देना है और तुम्हें भी मेरे साथ चलना होगा।" डा० नेगी ने मुस्कराते हुए कहा, "महाराज! मैं तो साथ अवश्य चलूंगा और सत्संग का लाभ उठाऊंगा, किन्तु आपकी गहरी चोट को देखते हुए अभी मैं यह नहीं कह सकता कि कल प्रातः आपको बैठकर सत्संग देना चाहिए या नहीं। मैं आपके स्वास्थ्य को सर्वोपरि मानता हूँ। सायंकाल आपकी

गहरी चोट की हालत देखकर ही मैं अपनी राय कायम कर सकूंगा। इस मामले में तो आपको मेरे कहने के मुताबिक ही चलना पड़ेगा।"

मैंने सहर्ष अपने प्यारे ओंकार की राय को स्वीकार किया और हम 18 सैक्टर में श्री नन्दा जी के घर पहुँच गये। नन्दा परिवार के लोग बेसब्री से हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे क्योंकि उन्हें मालूम था कि उस रात को हमें उनके यहाँ ही विश्राम करना था। मैं कुछ देर नाश्ता लेने के बाद ड्राईंगरूम में बैठा रहा और नन्दा परिवार से बातें करता रहा। नन्दा जी की छोटी बहु राधिका को कुछ ही दिन पहिले बेटी पैदा हुई थी। मैं उस बच्ची को देखने के लिए दूसरी मंज़िल पर भी गया। दोपहर के भोजन के बाद मैं अपने कमरे में लेट गया और 5 बजे सायंकाल तक सोता रहा। जागने पर मुझे लगा कि दर्द कुछ कम था। इतने में डाक्टर नेगी आ गये और उन्होंने मेरी पीठ का ठोक-बजा-कर पूरा परीक्षण किया। वह कहने लगे, "महाराज! मैं हैरान हूँ कि प्रातःकाल आपकी पीठ में सूजन थी, लेकिन अब बहुत कम है। यह तो चमत्कार ही है। फिर भी मैं आपको परामर्श दूंगा कि आप कल प्रातः सत्संग देने समय अपने चारों ओर तकिये रखवा दें।" मैंने उनके इस परामर्श को स्वीकार किया और चाय नाश्ता लेने के बाद डा० नेगी अपने घर चले गये।

प्रसंगवश मैं आपको यह बताना चाहूंगा कि डा० ओ. एन. नेगी परम दयाल जी महाराज के परमप्रिय

शिष्य त्वचा रोग के विशेषज्ञ स्वर्गीय ए. सी. नेगी के मझले सुपुत्र हैं। इनके बड़े भाई श्री विजय नरेश नेगी, जिन्हें परम दयाल जी ने पिछले जन्म का फकीर कहा है, केन्द्रीन पुलिस विभाग में इन्स्पेक्टर जनरल हैं और इस समय सीमा सुरक्षा के अध्यक्ष के रूप में असम और अरुणाचल प्रदेशों की सीमा-सुरक्षा की देखरेख कर रहे हैं। इनकी श्रद्धा और आस्था का पारावार नहीं है। श्री विजय नरेश अभ्यासी और योगी हैं और अध्यात्म ज्ञान में निपुण हैं। इस परिवार के सबसे छोटे भाई डा० चन्द्र नगेश नेगी त्वचा रोग के विशेषज्ञ और अपने पिता श्री के उत्तराधिकारी बटाला में अपने पिता श्री के चिकित्सालय को चला रहे हैं। यह अपने कार्य में बहुत ही निपुण हैं और भारत के कोने-२ से रोगी आकर इनकी चिकित्सा से स्वस्थ हो जाते हैं। इनकी शरणागत ती अवस्था बहुत ऊँची है और अपने बड़े भाई के समान सन्त गति में रहते हैं। इन तीनों भाइयों की श्रद्धा और भक्ति की परस्पर तुलना नहीं की जा सकती। तीनों ही मुझे बहुत प्रिय हैं। रात्रि के विश्राम के बाद प्रातः-काल 6 बजे हम चण्डीगढ़ से रवाना होकर साढ़े छः बजे तक रामगढ़ पहुँच गये।

प्रसंगवश मैं यहाँ यह बताना चाहूंगा कि विजय नरेश नेगी हमारे मानवता मन्दिर के आचार्य हैं और वह सत्संग देने और नामदान देने के अधिकारी और एक अनुभवी आध्यात्मिक प्रवक्ता हैं। उनकी आध्यात्मिक गति इस समय बहुत ऊँची है और भारत सरकार के एक उच्चतम सुरक्षा के अधिशारी होते हुए भी उनका पूरा झूकाव आत्मानुभूति की ओर है।

आचार्यों के सम्बन्ध में तुलना नहीं की जा सकती। मुझे यह प्रसन्नता है कि हमारे सभी आचार्य अपने-२ स्थान पर उपयुक्त और श्रेष्ठ हैं। वास्तव में जिसको आत्मानुभूति हो जाये उसकी शरणागत की अवस्था उच्चतम हो जाती है और वह अपने आपको सभी में और सद्गुरु को सर्वव्यापक और सर्वोपरि मानता हुआ किसी प्रकार के भेदभाव का अनुभव नहीं करता। उसका व्यवहार हमेशा प्रेममय होता है और वह ईर्ष्या, द्वेष और क्रोध से सर्वथा मुक्त होता है।

होशियारपुर पहुँचने के बाद हम लिखने-पढ़ने में और दैनिक साप्ताहिक तथा मासिक सत्संगों में व्यस्त रहे। जून के मासिक सत्संगों में व्यस्त रहे। जून के मासिक सत्संग में बाहर से सत्संगी भारी संख्या में आये और बटाला के सत्संगियों ने हर बार की भाँति रविवार प्रातःकाल सत्संगियों की चाय-नाश्ते की सेवा की। इस सत्संग के बाद हम अधिकतर होशियारपुर में ही रहे। केवल दो दिन के लिए हमें हमीरपुर हिमाचल में प्यारे सत्संगी ज़िला न्याया-धीश, श्री जानेश्वर गोयल के निवासस्थान पर सत्सग के लिए जाना पड़ा। हमारा यह संक्षिप्त हमीरपुर का दौरा बहुत आनन्ददायक रहा। वहाँ पर तीन सत्संग हुए। एक गोयल साहिब के घर पर, दूसरा हमीरपुर के न्यायिक मैजिस्ट्रेट के घर पर और तीसरा परम दयाल जी महाराज के दामाद मेरे प्यारे क्रान्ति कुमार शर्मा जी के घर पर आयोजित हुआ। जहाँ तक सत्संग के दौरे का सम्बन्ध है, इस मासिक सन्देश के लिए इतनी सूचना पर्याप्त रहेगी। गुरुपूर्णिमा तथा विदेशी दौरे की सूचना अगले मासिक

सन्देश में दी जायेगी।

मेरी आत्मा के स्वरूप परमप्रिय पाठको मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि आप मासिक सन्देश बड़े चाव से पढ़ते हैं और हर महीने उत्सुकता से इसकी प्रतीक्षा में रहते हैं। आपकी यह उत्सुकता केवल आपके प्रेम और श्रद्धा का प्रतीक नहीं हैं बल्कि यह मेरी उस प्रेम की धारा का सबूत है, जो इन पंक्तियों में बह रहा है और जिसे आप इस सन्देश को पढ़ते हुए आनन्द से पी रहे हैं और अत्यन्त प्रेम और सुख का अन्दरूनी अनुभव कर रहे हैं। हमारा और आपका यह प्रेम का व्यवहार यकतरफा नहीं है। जब आप मेरे वचनों को मानव मन्दिर के द्वारा पढ़ते हुए गद्‌गद होते हैं, तो आपकी सद्‌भावना की धारा प्रेम से ओतप्रोत होकर मेरे पास पहुँचती है और मैं उसीके वश में होकर आपको हर मासिक सन्देश में चिताने के लिए और इस सांसारिक जीवन की सफलता प्राप्त कराने तथा अन्त में जीवन्मुक्त अवस्था पर पहुँचाने के लिए इन शब्दों में अपने प्रेम का नमूना पेश करता हूँ। कुछ लोगों का विचार है कि दौरे का ब्यौरा मासिक सन्देश में उसी महीने में क्यों नहीं छापा जाता ?

मेरे प्यारे सत्संगियो !

यह मासिक सन्देश और दौरे का ब्यौरा कोई समाचार-पत्र की सूचना नहीं है। यह तो मेरा आपके साथ निजी अनुभव बाँटना है। समाचारपत्र की सूचना अस्थायी होती है, जब कि सद्‌गुरु की वाणी अविनाशी और देशकाल से परे होती है। यह पत्रकारिता नहीं है। यह तो सत्संग का धाराप्रवाह है। जब मैं आपको दौरे की सूचना दे रहा

होता हूँ तो प्रसंगवश मुझे आपकी आध्यात्मिक अवस्था को ऊँचा करने के लिए सूचना को सत्संग में बदल देना पड़ता है। इसलिये तिथियाँ और घटनाएँ पीछे रह जाती हैं। मेरे प्रेम की धारा देशकाल को चीरती हुई, आपकी आत्माओं को आकाश की ओर ले जाती है और आपके अचेतन मन में उस परमपद की ओर आगे बढ़ने के लिए प्रेरणा देती है। मैं समझता हूँ कि अनजाने में ही आप मेरे मासिक सन्देशों के द्वारा आन्तरिक उन्नति कर रहे हैं और आपका जीवन शुद्ध, ज्ञानमय और प्रेममय होता जा रहा है। पत्रकारिता में और साहित्य में यह अन्तर होता है कि पत्रकारिता की सूचना एक विशेष समय तक सीमित होती है, उसका प्रभाव केवल वर्तमान तक रहता है। साहित्य का विषय वर्तमान, भूत और भविष्य तीनों कालों में आनन्द देता है। पुरानी समाचार की सूचनाएँ दूसरे दिन ही बेकार हो जाती हैं और समाचार पत्र को रद्दी में फेंक दिया जाता है। किन्तु साहित्यिक पुस्तक चाहे वह उपन्यास हो, चाहे वह कविता हो, चाहे किसी विषय पर लिखा हुआ निबन्ध हो, स्थायी रहता है। साहित्य की पुस्तकें पुस्तकालय में कई वर्षों तक रखी जाती हैं।

साहित्य में और सद्‌गुरु की वाणी में भी अन्तर है। पुस्तकों का विषय चिरस्थायी होते हुए भी कुछ समय के बाद विशेष महत्त्व नहीं रखता। गुरु की वाणी हमेशा के लिए आनन्द देने वाली होती है। भगवद्‌गीता भी सद्‌गुरु की वाणी है। इस प्रकार कबीर साहिब की वाणी, स्वामी जी महाराज की वाणी, दाता दयाल जी महाराज की वाणी और परम दयाल जी महाराज की वाणी ऐसी है कि उसे बार-२ पढ़ने

पर नई उमंग पैदा होती है और उसे अपने जीवन में उतारने की प्रबल इच्छा होती है। सद्गुरु देशकाल से परे होता है। वह दयाल देश में रहता है। इसलिये उसकी वाणी को सुनने से या पढ़ने से आप कुछ समय के लिए काल के बन्धन से मुक्त होकर राधास्वामी हालत का अनुभव करने लगते हैं।

इन शब्दों के साथ मैं आप सबको इस महीने की सद्भावना तथा शुभकामना भेजता हूँ। मैं सच्चे दिल से चाहता हूँ कि आपके परिवार में सुख, शान्ति, समृद्धि तथा सदाकत का राज्य रहे।

सबको राधास्वामी !

आपका फकीरमय
मानव

Manav Mandir

ENGLISH SECTION

A Paper devoted to the Social, Cultural and Spiritual Welfare and Uplift of Mankind all over the World.

BE MAN

Nov. 10th, 1990

MANAVTA MANDIR
Hoshiarpur (Pb.) India

LIGHT ON ANAND YOGA

by

Data Dayal Maharshi
Shiv Brat Lal Ji Maharaj Varman
M.A., LL.D.

GLIMPSE VII
Matter, Mind and Soul

Matter is not Mind, Mind is not Matter. Soul is neither Matter not Mind.

Matter, in its gross-form, is the object of Man's senses. In its subtle-form it is something invisible, unrecognisable, and unfeelable. The gross-form is the vibratory current that gets condensed and becomes visible to us. The same may be said about the Soul which is perfectly im-Material. What it is, is not the subject of either Mentality or Intellectuality, for it is beyond the reach of them both. Before these faculties approach it, they are either entirely worn out, benumbed, absorbed or lost. Hence, the analysis and synthesis of Soul with the help of Intellect is not only improbable but altogether impossible. There

is, however, a process which helps an approach to it. It is called Intuition. It is something like infusion of everything into the Soul. Like a flash of lightning it works, like transient vision it comes into view and then it disappears. But it is a "fact," and those who have gone beyond the borders of dreamland to the region of vision, and have become "visionaries," they and they alone can have some sort of conception.

Life, Light, and Love—they have their own forms. In Matter there is Life, in mind there is Light, and in Soul there is Love. Every creature is a combination of Soul, Mind and Matter. Matter is body. Soul is akin to Spirit, and Mind, as has been said above, is a combination of reflexivities of both the objects, and this is why discretion and discrimination proceed from it.

It is through bodies that our existences are felt, known, perceived or thought of. Had there been nobody, no body would have seen, heard, known, felt, perceived, or thought of any body.

Body is the seat of outer consciousness rather Subconsciousness. Mind, on the other hand, is the centre of consciousness. The Soul, on the other hand, being the seat of innermost-consciousness, has a consciousness of its own. Mind-consciousness is Mentality ; its area of work is limited. For instance when you eat, you are conscious, tasting and relishing

your food, and cognizant of speaking about the variety, quality and quantity of your food. The conscious Mind is, and can be, aware of this much only.

When the food has been properly chewed, it is transferred to the region of Subconscious Mind which is Physical. Its area of work is unlimited. It digests and transforms food into blood, fat, semen, 'Ojas' and distributes them from top to toe without asserting as to what it is doing and without giving any sort of expression of its function. It is subject to the Consciòns Mind, and therefore it is called Sub-conscious. Beyond these two, is the realm of Super-conscious Mind which also, like the region of Sub-conscious Mind, is limitless, and its area of work is extensive.

When any man or woman falls subject to his Super-conscious Mind, he or she becomes "visionary". The vision is before the mental eye. The person speakes of it, believes it, puts reliance over it, trusts and confides in it—something so amazing and incomprehensible to others not concerned with it. On such occasions, people think that the man or woman has been obsessed and is under the influence of some evil genie or mischievous goblin. For, it is in this visionary-condition of Super-conscious Mind that an ignorant and illiterate man or woman speaks languages which he or she did not know in the wakeful condi-

tion. Ignorant the person is even now, for the personal-Soul is ignorant. It ignores all, but its ignorance is quite different from the ignorance of a partially cultured man.

GLIMPSE VIII
Three Functions of the Three Entities

Body works, Mind thinks, and Soul enjoys.

One endowed with Physicality should work, i.e. he should use his physical organs and keep them employed to serve certain objects of Nature. One who is thus employed, ought to have no complaint of the failure of Life, but his work should be accompanied with thought and love, as work without thought and love is ruinous to the physical tabernacle.

The function of Mind is to think, but thinking should be accompanied by work. Thought without work is destructive of the mental tabernacle of the human Soul.

Love is the function of Soul ; love is happiness and happiness is love. Love has no misery to complain against. Love is the characteristic of a Spiritual man but it should be attended by work and thought. These ought to be in unison and then the Life will e pleasant to oneself and pleasing to all.

Just as a man awakes, dreams and sleeps (soundly), so he must work, think and enjoy. To a man the goal of Life will not prove far to reach if he has a Mind to attain it. A perfected life is an embodiment of constant work, deep thought, and bliss. It is only the imperfect one that waste their time in murmuring for nothing. Complaints and murmurings lead to worries, and worries breed ill health, puts an end to an immature Life, and the goal is not attained.

Man has been called the greatest product of Nature, and as such he is not expected to waste his Energy in thoughts and pleasures. He has been created to work, to think, and to enjoy. These should go side by sidc as Soul, Mind and Body are combined and allied to each other.

Work without thought and relish, is a body without Mind and Soul. Similarly, thought without relish and work, is a disembodied Soul wandering in wilderness without any apparent mission of its own. Enjoyment without thought and work,is like a delicious food for a being who has no Body and no Mind.

Be always Viglent about Mind

by

Param Sant Param Dayal
Pt. Faqir Chand Ji Maharaj

I have had many falls in my life. Even at this old age I do fall sometimes. Some bad thoughts do enter my mind. However, I remain vigilent in all levels of existence i.e., physical, mental and spiritual levels. I think that in spite of my being cautions that I should never entertain bad thoughts in my mind, I do entertain them. What is the reason ? I think it is due to the deep impressions and suggestions of childhood that one is influenced according to them. I will like to narrate some incidents which happened during my childhood, which still influence me sometime.

Once, when I was posted at Baghadad during the First World War, I was proceeding on leave and going to India. I was waiting at Makina Camp for the ship by which I had to travel for India. I had a desire to smoke, so I went to the kitchen of some labourers to get some fire for my smoking pipe

(Hukka) from their fire place. There was nobody in the kitchen. All the labourers had left for their work. When I was picking up some fire, I saw a quarter coin of a rupee lying near the fire place. A desire of greed prompted me to pick up that coin. I saw here and there to be sure that nobody was seeing me. I picked up the coin and put it into my pocket before picking up the fire and came back.

When I went to bed at night, I thought of my fall of picking that coin and putting it in my pocket. I was so ashamed of my meaness and weakness of my mind that I couldn't sleep. Early in the next morning, I gave that coin in charity. It is very easy to give advice to others, but is vesy difficult to act upon that advice. We should be practical.

When I joined my job in Baghadad, I was very young. I stayed in Basara Baghadad for twelve years. I never went to see the city of Baghadad, because I had heard that the women of Baghadad were extremely beautiful and I was afraid of facing them. I didn't want that I should be distracted by their beauty and lose my celebacy.

One day, when I was sitting alone in my quarter No. H.P.-III, I saw two extremely beautiful ladies through my door, which had a bamboo curtain. I could see them, but they couldn't see me. They were going to visit some friends in the colony. On eeing them passing near my door, I closed my door,

so that I may not have any chance to glance my eyes on them. But after a minute I opened my door to see if those ladies had gone. What a fall. I couldn't control my mind. This mind is very unstable you cannot control it easily. So you have to be vigilent about this mind all the time, otherwise it will betray you.

Now listen about my third incident. Once when I was posted at Miani Railway Station as a station-master, I was standing at the railway platform when a train from Bohera arrived on the platform. I saw that an extremely beautiful well dressed young girl got off the train. As I was standing near the gate, she handed over the ticket to me. I was so much attracted by the beauty of that girl that I lost my mind. But in a minute I came to my senses, because of my extreme vigilence on mind. I repented on my mental weakness and slapped my face in the presence of that girl. The girl was stunned to see my behaviour. She went away. I did not know who she was. But she knew my mother very well. She was so stunned at my behaviour that she went to see my mother and told her everything.

When I came home, my mother asked me, why did I slap on my face, when the girl handed over the .cket to me ?

said, "Dear mother ! I am mature enough,

please don't ask me such questions." Saint Kabir has said :

मैं जाना मन मर गया, मर कर हुआ भूत।
भूत हो पीछे लगा, ऐसा मिला कपूत ।।

i.e., "I thought that the mind was dead, but it became a ghost who follows me all the time like a bad son.

The fourth incident is also worth mentioning. When I married for the second time and was still very young, I had a desire that my would be children should be such, that they should not have lust, anger, greed, attachment and egotism, because these are the greatest enemies of an individual. I wrote to Data about this desire of mine. Data replied, "Whatever you desire will be granted to you."

After sometime, I was blessed with a beautiful daughter, my first child. When she was born Data Dayal Ji Maharaj was visiting United States of America. I went to Lahore to visit Data Dayal's cottage. I brought some of his used clothes to wrap my dear daughter, because I was emotionally involved with Data and wished that the new born baby should be influenced by the radiation of Data's clothes. So she was wrapped in those clothes.

My daughter did get the radiation and she was born with those qualities which I had wished for her. She does not like new and beautiful clothes. She feels happy and contented wearing used and torn out

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

clothes. She is absolutely unattached to anybody. She never cried when her mother died. She is free from greed, jealousy and anger as I had wished for her before her birth.

Your thoughts and viberations are converged to your child, when it is in the womb of its mother. It is in your own hands to produce good, obedient, honest and worthy children or to give birth to unworthy children. That is why I always say that one should produce children for the sake of children. Unwanted children are a burden to the famiiy, society and the nation. They revolt because they know that their parents had done everything to destroy them when they were in mother's womb. How can they be obedient when the parents did not want them to come to this world ? They know that they are unwanted children.

The Ideological and Spiritual Background of Indian Democracy

by

H. H. Manav Dayal
Dr. I. C. Sharma Ji Maharaj

The adoption of democracy and its progress in India, have given confidence to its people. In spite of social, political and economic handicaps, India has not given up her democratic ideals and is marching forward. She has not been obsessed by any traditions and superstitions, usually present in ancient cultures. Revolution and violent changes take place in a society, which is tenacious and unprogressive. But when a culture is dynamic, ever-evolving and pragmatic, it helps a society or nation to adjust itself to the changing environment. The very fact that Indian culture has survived the test of time and still provides the broad base of modern democracy, is the proof of its being dynamic and evolutionary.

It is a strange phenomenon that India's culture is growing. It has absorbed in itself various elements

of diverse cultures, nationalities and languages. Its "unity in diversity" has always been responsible for its evolution and adjustability. The culture of India is not only dynamic and evolutionary, but is also deeply spiritual in nature. When I use the word 'spiritual', I do not mean something concerning departed souls or ancestor worship popular in China and Japan. By 'spiritual' I mean that inner aspect of human personality, which expresses itself in the creation and appreciation of art, poetry, music, drama, sculpture and even of mechanical and technological devices. Without the acknowledgement of this positive immanent reality of the spirit or soul, a culture is bound either to regenerate into nihilism and inactivism, or to a soulless totalitarianism.

The scientific and logical basis of the spirituality of Indian culture gives conviction and confidence to its adherents and also a unique power to outlive the storm and stress of life, as many western scholars have wrongly supposed. On the contrary, it is a positive practical philosophy, which brings about a synthesis of the religious and the secular, the spiritual and the mundane and of intuition and reason. Indian philosophy is a mode of life rather than a speculation, which aims at the integrated development of the individual, as well as that of the socity.

Man is an integrated whole of body, mind, intellect (reason) and soul. The body represents the

earth element, the mind represents the moon element, the intellect represents the sun element, and the soul represents galactic center. However, one individual may differ from another in the predominance of one of these aspects over the other three. A person physically stronger than others, may have the predominance of the earth element in him and his other aspects of personality may be weak. Such a person would be fit for adopting a profession in which physical strength is the prerequisite. Similarly, a person whose mental power is more predominant than the other three elements, would be suited to the profession, where the skilled labour, art, engineering etc., are necessary. The person with predominant intellect would be fit for the administrative profession. Lastly, a person with the spiritually predominant natue would be best suited for the professions of teaching philosophy and the priesthood. In fact, this is how the caste system in India was generated. Its original basis was not birth, but the natural inclination and the profession, adopted by individuals.

The physically predominated persons formed the caste, known as Shudras, or the labour class, the mentally predominant were called Vaishyas, or the skilled labour class. The intellectually predominant were called Khatriyas, or administrative class. The spiritually predominant people, were called Brahmans or priests. They adopted the profession of teachers

and spiritual guides, whose aim in life was to promote the well-being of all human beings, irrespective of caste, creed and nationality.

Corresponding to these four aspects of human nature and society, four values of life have been laid down. These four values, Purusharthas, or ends of life are as follows :—

(1) Artha, or wealth (economic value),
(2) Kama, or love (emotional value),
(3) Dharma, or duty (ethical value),
(4) Moksha, or spiritual liberation (spiritual value).

All these four values are equally important for the integrated development of the individual and of society. Wealth or economic value is essential for the physical body of an individual and the material aspect of the society. Kama, or love, or satisfaction of desires is required for the normal development of mind and the artistic aspect of society. Duty or ethical value leads to the intellectual development of the individual and the administrative aspect of society. Finally, spiritual liberation, or self-realization brings about the development of the spiritual aspect of the individual and of the society. The recognition of individual differences, so far as the physical, mental and intellectual aspects are concerned, is not rejected. After all, individuals are not homogeneous and the levelling down of society by any

totalitarian method would be going against nature. But the underlying spirit which transcends the physical mental and social differences, makes us conscious of 'unity in diversity' and 'harmony in discord'. Thus Indian democracy, which avoids both the extremes of totalitarianism and extreme individualism, is in keeping with the tradition, the philosophy and the culture of India. Although India has adopted western democracy and has accepted industrialization as the means of the economic and political development of her people, yet she is temperamentally disinclined to crush her ethical and spiritual values by adopting any kind of forced euqality among her people.

India's culture has sustained her spirit throughout. She has been able to survive devastating foreign attacks, atrocities of fanatic kings and British Imperialism, without losing her spirit. Although the body of India has been conquered by foreign invaders many times and such conquest has brought about social, political and economic degeneration from time to time, yet her spiritual background still stands as the redeeming feature of Indian culture. During the middle ages, when India lost her political freedom, many salutary traditions were lost and the ignorant masses fell victim to superstitions and blind faith. During this period the degeneration of the caste system, which was originally viable and free from hereditary bias, started. This social degeration was

definitely man-made and embodied the very opposite of the essence of Indian culture and philosophy.

There are many misunderstandings among Westerners with regard to the evils of the caste system in India. Most of the people are given to understand that the untouchable or the so-called lower castes cannot change their profession. In fact, the caste system is no bar to any individual, so far as the adoption of any profession or occupation is concerned. Misinformed foreigners are under the impression that higher castes, say Brahmans or Kshatriyas are all rich and so-called lower caste people are all poor. That is not true. Many people of the lower class, who are business men are very rich, while most of the Brahmans, who have not changed their priestly profession, are very poor. As a matter of fact, the caste system in India does not exist in the form which most of the people imagine. There are millions of Vaishyas and Brahmans who are pauper and some of so-called untouchables are big industrialists, engineers, businessmen, administrators, members of legislatures and ministers.

The picture of caste system is certainly different from the one depicted in the foreign journals and newspapers. Indian culture is not static and opposed to economic, social or political changes. It has no prejudice against the use of machinery etc. It is not the case that Indians were heathens before British

occupied India and became enlightened by the magical touch of British imperialism. On the contrary, adjustability—social, political and economic—is the very essence of Indian culture and philosophy. To strip India of her cultural and political history, to disinherit her from her spiritual heritage and to regard her as the creation of British liberation is to deny the individuality of Indian democracy.

Modern democracy is no doubt a Western concept and its practice, as a system of government, did develop and reach its climax in the West. It is also true that Indian leaders like Gandhi and Nehru, were educated in the West and were inspired by Western history and democracy. But the adoption of democracy in India would not have been possible, if India had no cultural traits suitable to democracy. Gandhi dedicated his life to the cause of Indian freedom not only because he was educated in England, but his being true Indian in essence which helped him to get freedom for his beloved country.

Patriotism is not generated by imitating any foreign culture, but by recognizing the worth of one's own national heritage. Gandhi was the embodiment of Indian culture. His methods, concepts and goals were purely Indian. Before Gandhi, the national movement was led by the great patriot Lokmanya Balgangadhar Tilak. This great leader of India was not educated abroad. He lead his life according to

the precepts of Gita, and even Gandhi followed him in this respect. Had Tilak not died suddenly, Gandhi would have remained in the background. This dynamic person gave a powerful push to the freedom movement, and even after his death, his views were the source of inspiration to all Indian patriots and political leaders. My purpose in referring to the deep-rooted love of Lokmanya Tilak for Indian culture is to point out how Indian philosophy and culture have played an indispensable role in the political history of India.

This aspect of the evolution of Indian democracy is little known to the majority of people. There is no doubt that economic and technological aid from the West has strengthened Indian democracy, but we should not forget the fact that the progress of democracy is inseparably associated with Indian culture. The introduction of decentralization is the biggest achievement of the democratic experiment in India. The establishment of Panchayat (village essembly) system is helping the economic development of India. India is rich in resources and the economic development of the country will certainly be exploited by the adoption of technology and automation. The enthusiasm of the people and the introduction of democratic decentralization, which has given political and administrative responsibility, will boost Indian economy.

Hindu religion has no prejudice against sex and birth control. After the family planning programme was introduced and the advantages of planned family were known to the people of India, even the illiterates came forward to adopt the methods of birth-control. This will certainly have a check on the population. The liberation of Indian culture is a unique factor. I was surpised to see that in some countries in the Western world a doctor is not allowed by law to advise on family planning. But you see that in India family planning is not only a very important function of the medical department, but it is becoming a vogue.

India's cultural background makes her people adjust easily to new situations. Although India is a young democracy, yet it has excelled even the oldest democracies in granting equal opportunites to women in politics and other fields. There are hundreds of women who are elected members of the state legislative assemblies and Parliament. In every state there are women cabinet ministers and also ministers in Federal cabinet. There are women ambassadors, governors and administrators. It is noteworthy that India is the country which has provided the first woman president of the United Nations. It is because of India's rich culture that the position of women is most important and exalted. According to Hindu culture, woman is highly respectable. Women had

greater freedom in ancient times. The ceremony of Swayamvara, in which the women were allowed to choose their own husbands, was very common. There is ample evidence for the presence of co-education in the hermitages in the hoary past of India. Women had a unique position. There were many women philosophers and preachers. No religious ceremony, performed by a man, was considered complete without the participation of his wife. A Sanskrit verse says, "Wherever women are worshipped, there the gods move about." Even God is called Ardhnarishwar i.e., half woman.

Although these cultural traits centering on the equality of women were supressed during the subjugation of India, yet they were dormant in Indian society. That is why, during the struggle for independence, Indian women stood shoulder to shoulder with men and made great sacrifices. Thousands of women came forward actively to court imprisonment Mrs. Kamla Nehru is one of the examples. Her death was itself a great sacrifice to enable Mr. Nehru to serve his country. Similarly the names of Mrs. Kasturba Gandhi, Mrs. Vijaya Laxmi Pandit, Mrs. Sarojni Naudu, Raj Kumari Amrit Kaur, Prime Minister Mrs. Indra Gandhi and others will ever shine in the political history of modern India.

During an armed revolt in India against the British in 1857, a brave woman Laxmi Bai, the queen

of Jhansi, a great heroine led this war of independence. She fought in the battlefield bravely and was killed in action. She fought using a sword in each hand simultaneously. Her name is the source of great inspiration to women even today. In brief, we can say that in every generation India has produced thousands of women whose existence helped to civilize the country.

India's rich heritage make Indian democracy a unique system of government. Democracy is bound to differ in its operation from country to country and culture to culture. Indian democracy is an amalgam of Eastern and Western cultures. But she will never give up her rich spiritual heritage. Values always make men human. We should always remember that man, the maker of science and systems is himself above ideologies.

Monthly Message

OF

H. H. PARAM SANT HAZUR MANAV DAYAL Dr. I. C. SHARMA JI MAHARAJ

My dearest Ownselves Satsangis,

Radhaswami and Blessings of the Supreme Compassionate Lord.

After the conclusion of Vaisakhi festival, I mostly stayed in Hoshiarpur upto Guru Purnima till July 8, 1990 becanse soon after that date I had to proceed for foreign tour. During this period I undertook a brief Satsang tour to Kannauj, Didarganj and the vicinity in the last week of May '90. While returning I also visited Yamuna Nagar in Haryana. The main reason for this tour was my visit to Rohilkhand University in Baraiily for my academic engagement. Even though I have retired from teaching and research from Universities in U.S.A. as well as India since 1982 from the post of professorship, yet many Universities have still associated me with the academic activities because of my long experience and reputation in the area of philosophy. Consequently whenever I am on a foreign tour, I have to fulfill some

academic commitments in the universities in England and U.S.A. I am recognized as a supervisor for Ph. D. in philosophy and have to guide several students for this purpose every year. At-least five students work under my guidence in Ph. D. every year. When anyone of these students completes his desertation and all the formalities are complete, I have to act as one of the examiners for the viva-voce of that candidate. That was the reason why I had to visit Baraiily by the end of May '90. Consequently the Satsang tour to Kannauj was also arranged.

In Kannauj we stayed one day at Makrand Nagar and the seeond day in Didarganj for satsang. The satsangis attended both these discourses in large numbers from different adjoining areas of Kannauj. The first night we stayed at Makrand Nagar and the next morning as well as evening we stayed in Didarganj where the evening satsang was very effective. Next morning we returned to Makrand Nagar and held one satsang in the morning and one in evening. Here also a large number of satsangis from near by villages, Bhatta Kothi, Kanpur, Lucknow and Mishrik Tirtha participated in the discourses. It is important to mention here that Ach. Krishna Mohan Srivastava of Mishrik Tirtha and Ach. Krishna Mohan Tiwari of Lucknow had arrived in Makrand Nagar on the very first day. Both these Acharyas stayed with me throughout upto Hardoi.

In brief, it would suffice here to say that we were greatly influenced by the true love, faith and conviction of the satsangis in all the satsangs. Even though the time was short, we visited a village on our way back to Yamuna Nagar on account of the insistence af the satsangis. We stopped for about three hours in a small village. Even though there was scorching heat and sun, we did not feel the heat because of the love of the satsangis. In that village also we visited two houses. One of them, which was small and shabby, appealed to me more than the other. The inmates of this house let flow joy during our stay. One discourse was also delivered in the small village. The villagers had prepared lunch for us and expected that we should eat there. Since we had a very little time at our disposal, the lunch was packed for us. Some food had also been packed for us in Makrand Nagar. Consequently when we reached Hardoi at about 12 p.m., Ach. K. M. Tiwari suggested that we should take our lunch in the public garden under the shade of tree. The driver of our chariot-like Matador Sri Harbans Lal drove us towards the garden. The sun was extremely hot. It look us some time to locate the garden. While driving in the garden we discovered a place which was cool on account of the shade of the trees above it and the carpet of green grass under our feet. We

yed the meals under the cool shade. Ach. K. M.

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

Srivastava brought us cold water in thermos. In the meantime Miss Sadhana had served the lunch in paper-plates on the sheet of cloth stretched for all of us. We all enjoyed the meals. We occupied our seats in the Metador at 2 p.m. Here Ach. K. M. Tiwari and Ach. K. M. Srivastava had to depart from us because they had to catch bus for Lucknow. Before we started, both of them, while bidding us fare-well in that garden, shed tears because of the pangs of separation, as they were standing outside the Metador. Their tears of love was justified. The flow of love of the satsangis expressed during the satsang had impressed them deeply, as a result of which tears flowed from their eyes. We also felt a pleasant pain within ourselves.

We arrived in Yamuna Nagar at 10 p.m. via Saharanpur. Mr. Ramesh Chandra and his family were eagerly waiting for us at their residence. Next morning there was a brief satsang which was also attended by the satsangis from Sarsonheri. The evening discourse was attended also by the satsangis of Jagadhari, Sarsonheri and Saharanpur including Mr. Ram Prakash Bohra of Jagadhari, Ms. Krishna the Principal of Manav Dayal Public School, Khizrabad, Mr. Dev Dutta Tyagi, Retired Executive Engineer and Mr. Jnaneshwar Tyagi both of Sarsonheri. The ening satsang was organized on a large scale. Ramesh Chandra is the younger brother of Late

Sri Jagannath Gupta of Ramgarh. When we arrived here, we came to know that the Gupta family of Ramgarh was in grim grief, because of the suddan death of the youngest son of Mr. Jagannath on the 12th May in a road-accident. Even though I had written two letters of consolation to that family before starting from Hoshiarpur, I was told that those letters had not been received in Ramgarh due to some unforseen reasons. Therefore I decided that we should go to Hoshiarpur next morning via Ramgarh. Mr. Ramesh Chandra also accompanied us to Ramgarh the next day.

It appeared that our visit to Ramgarh was most appropriate. The whole family had been awating my letter. They were overwhelmed on seeing me in person. After consoling them for two hours by explaining the spiritual significance of the departure of the young boy, the family was consoled. It was reported that Late Sri Jagannath Gupta had declared before his death that his younger son was dearest to him and that he would always be with him (Mr. Jagannath). That is why this accident became the means of the youngest son's departure to the Final Abode to join his father earlier than expected. My visit to this family was beneficial because the family was not decided whether they should invite the whole village for dinner on the occasion of the celebration of the death anniversary of Sri Jagannath Ji on the

3rd June as usual or not. I suggested that there should be no feast for the residents of the village, and that the anniversary must be celebrated with the arrangement for the meals of the satsangis coming from outside the village. This suggestion was gladly accepted by all the members of family and the anniversary was celebrated on the 3rd June at the site of the memorial Temple of Late Sri Jagannath Gupta most enthusiastically.

We arrived in Hoshiarpur on the 30rh May. There is no doubt that we had to face scorching heat of the sun during this tour. Everyone said that tour should not be undertaken in such a hot season. I, however, felt that if I had not gone on this tour, the families of Late Jagannath of Ramgarh would have been frustrated, and the satsangis of Yamuna Nagar as well would have been disappointed. When I repeatedly say that in spiritual life one should rise above the dualities of pleasure and pain, loss and gain, heat and rain, and victory and defeat, and when I have to obey the orders of Param Dayal Ji Maharaj regarding the service to the satsangis, I should practice this integrative Yoga and rise above these antinomies while undertaking the satsang tours. This is what actually happened during the above mentioned tour. The will power in man is the power of the Existence of The Supreme Element in him.

The question arises : How far is man free in

his voluntary actions ? Or, are all actions performed by us completely free, or, they are determined by environment ? This question can be answered from two points of view. One point of view is that of determination or fatalism. The second is that of indeterminism. According to determinism, every event in the universe is determined by the law of cause and effect. Every event or happening has a definite cause. Science has made progress on the basis of the Law of Cause and Effect. Nothing happens in nature without a cause. Consequently science has made many inventions by understanding the cause of every event and by controlling it. If a particular pattern of conditions cause an event, the same event or effect will repeatedly occur under the same conditions. For example, water is the effect of the combination of two parts of Hydrogen and one part of Oxygen gas. Whenever we combine Hydrogen and Oxygen in the ratio (H_2O), its effect will always be water. It proves that every event is determined by a particular cause. This determination is hundred percent applicable in the world of Matter and plant life. This very physical determinism makes us send the space-ships to moon and other planets accurately. When the events of nature are mechanically determined by its antecedent cause, the actions of man, including voluntary actions, should also be determined in the same way.

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

If determination can be applied to all the actions of man, his voluntary actions must also be mechanically predictable. But it does not appear to be the case. Suppose I go to a cloth-merchants shop to by a piece of cloth for my new suit. The sales-man shows me two pieces of woollen cloth of two different colours. I have to opt for one of the two colors. Before making my decision, I reflect in my mind and argue with myself. At first I think that the blue colour would be desirable because the colour of sky is also spiritual color. Then I think that green color will be better because it is healing color. Besides I also have a tie of green color already with me. Soon after reflecting a little more, I feel that green colour is no good. It symbolizes the begottedness of Muslims. I also remember that I already have a green color suit which I got tailored two years ago. After considering the pros and cons I decice that I should buy the blue color woolen cloth.

After taking this decision, I have the right to say that I made the final choice myself freely. This action of mine is, therefore, not determined be any external circumstances. It is so because no one can predict that I would mechanically choose the blue colour in the same way as the particular ratio of Hydrogen and Oxygen when combined, would necssarily produce water. However, the psychical determination challenges my volition. According to it even

though I had not decided to chose the blue color. before entering into the shop of the cloth-merchant, yet the atoms of my body and the unconscious wishes of my mind had already determind that I would prefer blue color to the green. The difference between man's voluntary actions and the event of production of water from gases is due to the fact that in the case of physical event, like that of water, we are fully aware of the conditions which produce the effect, whereas we are not aware of all physical and psychic causes of the voluntary actions. If we could have such comprehensive knowledge, we would be able to predict the voluntary action as well. Thus the above mentioned example would not be an exception to mechanical determinism. This view is called psychic determinism.

The view which is contrary to determinism, is called ***libertarianism*** or indeterminism. According to this view point, man's voluntary actions are completely free from external circumstances. Therefore we cannot forecast the behaviour of man. Had man been determined in his actions eompletely by external circumstances, like the mineral kingdom and plant kingdom, we would be able to predict his behavior. Since we cannot do so, the libertarian view appears to be right. But if we consider this matter minutely, it would be evident that the actions of man, particularly the voluntary actions based on the freedom of

will, are not absolutely free or chaotic. His voluntary actions are not impulsive like the actions of the animals. A dog, when hungry, might snatch away the bread from a little child and deprive him of eating his food. But a rational moral man would not do so. In other words, man is limited in his freedom. In his case, freedom means giving a particular pattern to restrict his actions on the basis of intelligence and to bring them under a discipline. If we were to consider man to be absolutely free and impulsive, there would be no discipline in the society, in politics or in ethics. This would lead to a chaos. Man's freedom consists in the self-limitation of his freedom. Therefore, it can be said that man's voluutary actions are neither machinically determined by external circumstances, nor are they irrational, impulsive actions like those of the animals. In other words, his actions are neither absolutely ***determined***, nor are they absolute. On the contrary, they are self-determined because they are inspired by the soul of man.

The freedom of will in man and his being self-determined, proves that he has in him that indistructible part of Supreme Element which is different from all the physical, mental and spiritual experiences and that very element is indistructible aspect. There is no doubt that fructifying action of man is immutably

determined. The following words of Sant Tulsidas are also significant :

'The whole cosmos is determined by the law of action indeed ;
None can from the effect of his actions be freed.

This, however, does not mean that man does not have the freedom to get liberation from the spatio-temporal world to go beyond Karmic determination and the limitations of the nature. We should not forget that Sant Tulsidas has made this statement with reference to the cosmos but not in connection with the Soul. You are coming across a Perfect Master and hearing his spiritual discourse is no doubt the effect of your Karmas of past life, but surrendering to the Master after listening to his spiritual discourse and obeying his orders, is entirely dependent on the freedom of your will. Therefore, every verse of Data Dayal Ji Maharaj, written about Radhaswami faith, emphasizes that man can transform his life on the basis of his voluntary decision to do so. The following verse of his in worth remembering :

You should associate with the Master day and night ;
Thus reform your life and be upright.
Get rid of the burden of Karmas from your head ;
Be free from the temporal limitations instead.
Transcend your body, soul and mind ;
Attain the jewel of devotion of rare kind.
Radhaswami the Master has revealed this secret of rare kind
You should look at its pros and cons in your mind.

Data Dayal Ji Maharaj has further expounded this very view of the freedom of will in the following verses :

The terrible time poise us like snake ;
Under your control with your initiation you can't ke.
A person who does not meditate after initiation,
Brings about himself his deadly destruction.

The association and spiritual discourses of the Perfect Master is unfathomably great. The association of the Perfect Master is necessary even after attaining the climex of meditation.

Incidently I have thrown some light on satsang that spiritual discourse which is the first step for spiritual realization in Radhaswami faith. The discussion of this very topic will be continued in the next monthly message. This discussion would continue for some time, after which the topic of Perfect Master the Sadguru, Satsang and Satnam, spiritual discipline would be taken up. In this way the series of the three steps for spiritual realization would benefit the satsangis and would give them inspiration.

Yes ! I was telling you that we arrived in Hoshiarpur on the 30th May via Ramgarh. Two days after staying in Hoshiarpur, we had to proceed to

Ramgarh to participate in the conference of the saints in connection with the death anniversary of Late Sri Jagannath Ji. After resting in Chandigarh on the night of the 1st June, we started for Ramgarh early morning and arrived there at 6 a.m. The spiritual discourse was effective as usual, and hundreds of satsangis were benefitted by it. We returned to Hoshiarpur in the evening of the 2nd June.

I was busy in writing and delivering daily and weekly satsangs. The monthly satsang for the month of June was attended by a large number of satsangis from outside of Hoshiarpur. The satsangis of Batala served breakfast to all the participants in the morning of Sunday. After this I mostly stayed in Hoshiarpur with an interval of two days visit to Hoshiarpur for delivering satsangs on the invitation of Mr. Janeshwar Goel the District and Sessions Judge of the area. This brief visit to Hamirpur was very successful. Three spiritual discourses were organized in Hamirpur. One at the residence of Mr. Goel, the second at the residence of the Chief Judicial Magistrate of Hamirpur, and the third at the residence of my dear Kranti Kumar Sharma the worthy son-in-law of Param Sant Pt. Faqir Chand Ji Maharaj. This much information regarding the satsang tour seems to be enough so far

as this monthly message is concerned.

With these words, I send my blessings and best wishes for this month. I sincerely wish that happiness, prosperity, peace and Truth may reign ever in your families.

Blessings of the Supreme Compassionate Lord to all of you.

Yours in Faqir
Manav.

शुभ सूचना

(1)

सभी सत्संगी और प्रेमी सज्जनों को सूचित किया जाता है कि 29 नवम्बर 1990 दिन वृहस्पतिवार को सायंकाल 5 बजे सालवान पब्लिक स्कूल, पुराना राजेन्द्र नगर, नई दिल्ली में एक विशाल सत्संग आयोजित हो रहा है जिसमें अमेरिका की आध्यात्मिक संस्था A.R.E. (Association for Research and Enlightenment) यानी ज्ञान एवं आध्यात्मिक अनुसंधान की संस्था' के 25 सत्संगी उपस्थित हो रहे हैं। यह वही संस्था है जो परम दयाल पं० फकीर चन्द जी महाराज को अमेरिका में सत्संग प्रवचन देने के लिए आमंत्रित किया करती थी।

उक्त सत्संग में परमसन्त हजूर मानव दयाल डा० ईश्वर चन्द्र शर्मा जी महाराज का सत्संग होगा। सभी सत्संगी भाई-बहन इस शुभ अवसर पर सादर सप्रेम आमंत्रित हैं।

जनरल सेक्रेटरी

---

(2)

सभी सत्संगी व प्रेमी सज्जनों को सूचित किया जाता है कि 30 नवम्बर 1990 दिन शुक्रवार को सायंकाल 5 बजे (Five Star) अशोका होटल, वाराणसी (उ० प्र०) में एक विशाल सत्संग आयोजित है जिसमें अमेरिका की संस्था A.R.E. (Association for Research and Enlightenment) यानि 'ज्ञान एवं अध्यात्म अनुसंधान की संस्था' के 25 सत्संगी उपस्थित हो रहे हैं। यह वही संस्था है जो परम दयाल जी महाराज को अमेरिका में सत्संग प्रवचन देने के लिए आमंत्रित किया करती थी। परमसन्त हजूर मानव दयाल डा० ईश्वर चन्द्र शर्मा जी महाराज का सत्संग होगा। सभी सत्संगी व प्रेमी जन इस शुभ अवसर पर सादर आमन्त्रित हैं।

जनरल सेक्रेटरी

Regd. No. 26265/74

MANAV MANDIR

NOV. 10th 1990

NWHSP—7

Address

2601. Th. Bahadur Singh,
H.No. [illegible] Kumarpalli,
Post. Hanamkonda,
Distt. Warangal (A.P)

From :

M A N A V A T A   M A N D I R
SUTEHRI ROAD,
HOSHIARPUR - 146-001

Shiv Dev Rao Press, Manavata Mandir, Hoshiarpur (Pb.)